वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

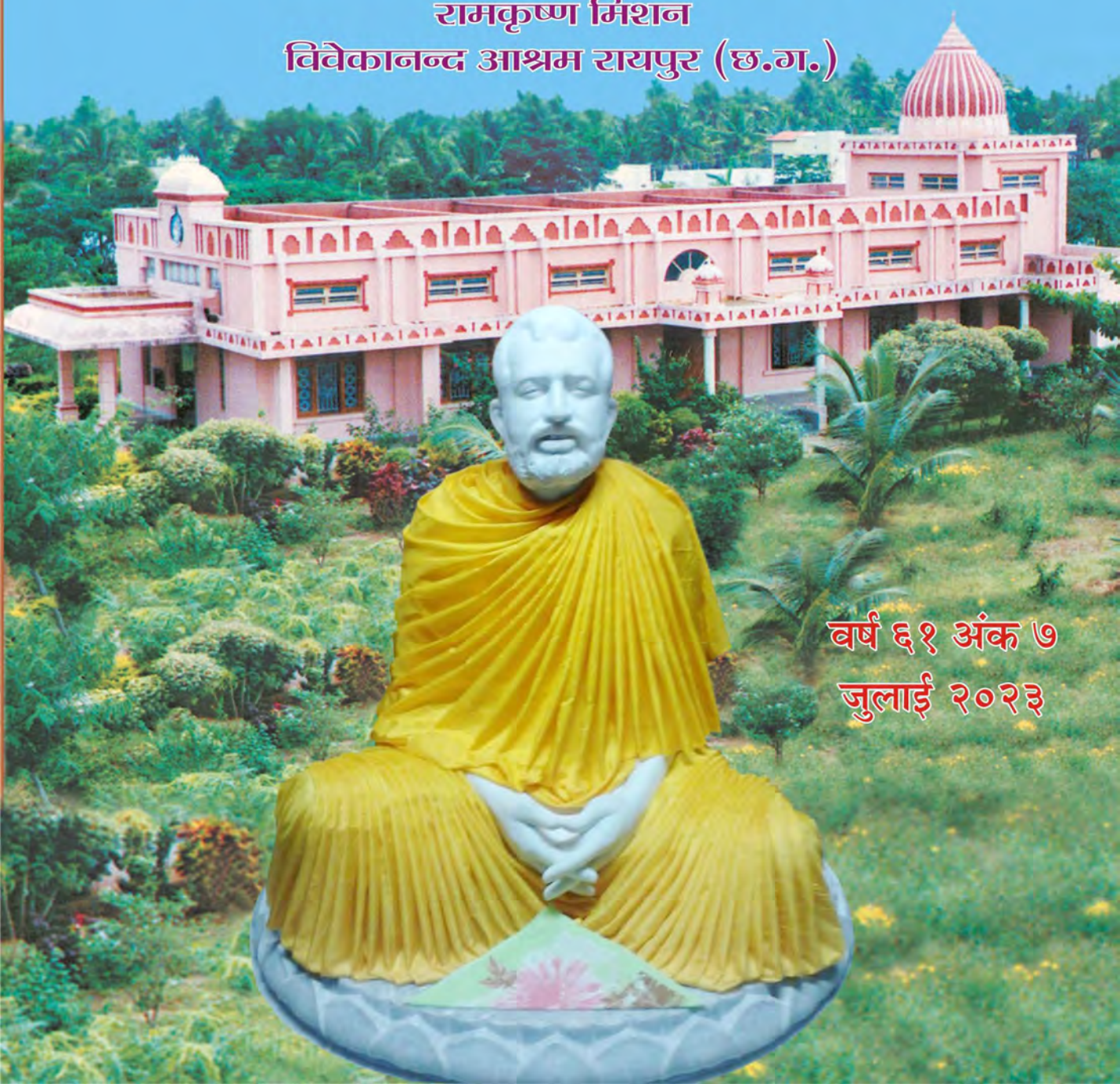

वर्ष ६१ अंक ७
जुलाई २०२३

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६१

अंक ७

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

श्रावण, सम्वत् २०८०

जुलाई, २०२३

अनुक्रमणिका

* बिना गुरु के तुम्हें ज्ञान नहीं होगा : विवेकानन्द ३६६
* भतरौड बिहारी मन्दिर : भगवान का लीलास्थान (राजकुमार गुप्ता) ३६९
* अज्ञात संन्यासी से विश्वविजयी विवेकानन्द होने की यात्रा में अलमोड़ा का योगदान (मोहन सिंह मनराल) ३७४
* (बच्चों का आंगन) शबरी की गुरु भक्ति (संजय सिंह) ३७८
* रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि (स्वामी पररूपानन्द) ३७९
* रामकृष्ण भावधारा से क्यों जुड़े हैं? (स्वामी सत्यरूपानन्द) ३८७
* (युवा प्रांगण) परिस्थितियों से हार न मानो (श्रीमती मिताली सिंह) ३८९
* श्रीरामकृष्ण का आकर्षण (स्वामी अलोकानन्द) ३९१
* (कविता) गुरु पद कमल शत शत वन्दन (आनन्द तिवारी पौराणिक) ३७१
* (कविता) गुरु हरते अज्ञान तिमिर को (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ३८८

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ३६५
पुरखों की थाती ३६५
सम्पादकीय ३६७
सारगाछी की स्मृतियाँ ३७२
श्रीरामकृष्ण-गीता ३८८
प्रश्नोपनिषद् ३९७
रामराज्य का स्वरूप ३९८
गीतातत्त्व-चिन्तन ४००
साधुओं के पावन प्रसंग ४०२
समाचार और सूचनाएँ ४०६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

यह मन्दिर रामकृष्ण मठ, कोयम्बटूर, तमिलनाडु का है।

जुलाई माह के जयन्ती और त्यौहार

०३	गुरु पूर्णिमा
१५	स्वामी रामकृष्णानन्द
१३,२९	एकादशी

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री सुभाष वसुदेव, नौगाँव (असम)	१,२००/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से

अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए । आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं । आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है ।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी ।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे । दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा । यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है ।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो । आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं । आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें ।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी । तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है । यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें । आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं । प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा । रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है ।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

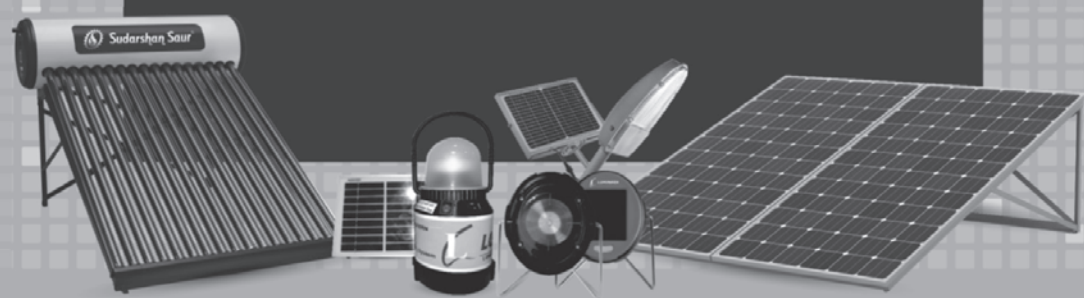

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६१ जुलाई २०२३ अंक ७

गुरु स्तुतिः

।। श्रीमहादेव उवाच ।।

जीवात्मनं परमात्मनं दानं ध्यानं योगो ज्ञानम्।
उत्कलकाशीगङ्गामरणं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।
प्राणं देहं गेहं राज्यं स्वर्गं भोगं योगं मुक्तिम्।
भार्यामिष्टं पुत्रं मित्रं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।
वानप्रस्थं यतिविधधर्मं पारमहंस्यं भिक्षुकचरितम्।
साधोः सेवां बहुसुखभुक्तिं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।
विष्णो भक्तिं पूजनरक्तिं वैष्णवसेवां मातरि भक्तिम्।
विष्णोरिव पितृसेवनयोगं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।

– महादेवजी ने कहा – जीवात्मा-परमात्मा का ज्ञान, दान, ध्यान, योग तथा पुरी, काशी या गंगा-तट पर मृत्यु, इन सबमें से कुछ भी गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

– प्राण, शरीर, गृह, राज्य, स्वर्ग, भोग, योग, मुक्ति, पत्नी, इष्ट, पुत्र, मित्र, इन सबमें से कोई भी गुरुदेव से बढ़कर नहीं है। वानप्रस्थधर्म, यतिधर्म, परमहंस के धर्म, भिक्षुक के धर्म, साधुसेवारूपी गृहस्थ-धर्म या बहुत से सुखों का भोग, इनमें से कुछ भी गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

भगवान श्रीविष्णु की भक्ति, उनके पूजन में अनुरक्ति, विष्णु भक्तों की सेवा, माता की भक्ति, श्रीविष्णु ही पिता रूप में हैं, इस प्रकार की पिता की सेवा, इनसें से कुछ भी गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

पुरखों की थाती

दुराचारी च दुर्दृष्टिर्दुरावासी च दुर्जनः।
यन्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नरः शीघ्रं विनश्यति ।।७९९।।

– जो व्यक्ति दुराचारी, बुरी दृष्टि रखनेवाला, बुरे स्थान का निवासी और दुष्टबुद्धि है, ऐसे लोगों के साथ मित्रता रखनेवाला मनुष्य (संगति के प्रभाव से) शीघ्र नष्ट हो जाता है।

दूरतः शोभते मूर्खो लम्बशाटपटावृतः ।।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किञ्चिन्न भाषत।।८००।।

(चाणक्य)

– महँगे वस्त्र धारण किये हुए कोई मूर्ख व्यक्ति भी दूर से सुशोभित दिखता है, परन्तु ज्योंही वह किसी विषय पर अपना मुँह खोलता है, त्योंही उसकी मूर्खता प्रकट हो जाती है।

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः।।८०१।।

– जो व्यक्ति किसी के हृदय में निवास करता है, वह दूर होने पर भी दूर नहीं प्रतीत होता, परन्तु जो व्यक्ति किसी के हृदय में स्थान नहीं रखता, वह निकट होकर भी दूर लगता है।

बिना गुरु के तुम्हें ज्ञान नहीं होगा : विवेकानन्द

जिस व्यक्ति की आत्मा से दूसरी आत्मा में शक्ति का संचार होता है, वह गुरु कहलाता है और जिसकी आत्मा में यह शक्ति संचारित होती है, उसे शिष्य कहते हैं।

यथार्थ धर्म-गुरु में अपूर्व योग्यता होनी चाहिए और उसके शिष्य को भी कुशल होना चाहिए। जब दोनों ही अद्‌भुत और असाधारण होते हैं, तभी अद्‌भुत आध्यात्मिकता जागृत होती है, अन्यथा नहीं। (४/१७-१८)

तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनाः अहेतुनान्यानपि तारयन्तः। – वे इस भीषण भवसागर के उस पार स्वयं भी चले गये हैं और बिना किसी लाभ की आशा किये दूसरों को भी पार करते हैं ! ऐसे ही मनुष्य गुरु हैं और ध्यान रखो दूसरा कोई गुरु नहीं कहा जा सकता। (५/२३७)

प्रकृति का यह एक रहस्यपूर्ण नियम है कि खेत तैयार होते ही बीज मिलता है। ज्योंही आत्मा को धर्म की आवश्यकता होती है, त्योंहि धार्मिक शक्ति को देनेवाला कोई न कोई आना ही चाहिए। खोज करनेवाले पापी की भेंट खोज करनेवाले उद्धारक से हो ही जाती है। जब ग्रहण करनेवाली आत्मा की आकर्षण-शक्ति पूर्ण और परिपक्व हो जाती है, उस समय उस आकर्षण का उत्तर देने वाली शक्ति आनी ही चाहिए। (९/२३)

सच्चे गुरु वे ही हैं, जिनके द्वारा हमको अपना आध्यात्मिक जन्म प्राप्त हुआ है। वे ही वह साधन हैं, जिसमें से होकर आध्यात्मिक प्रवाह हमलोगों में प्रवाहित होता है। वे ही समग्र आध्यात्मिक जगत् के साथ हमलोगों के संयोग सूत्र हैं। व्यक्तिविशेष के ऊपर अतिरिक्त विश्वास करने से दुर्बलता और अन्तः सारशून्य बहिःपूजा आ सकती है, किन्तु गुरु के प्रति प्रबल अनुराग से उन्नति अत्यन्त शीघ्र सम्भव है। वे हमारे अन्तःस्थित गुरु के साथ हमारा संयोग करा देते हैं। यदि तुम्हारे गुरु के भीतर यथार्थ सत्य है, तो उनकी आराधना करो, यही गुरुभक्ति तुम्हें शीघ्र ही चरम अवस्था में पहुँचा देगी। (७/१००)

यदि किसी एक भी जीवन में ब्रह्म का विकास हो गया तो, सहस्त्रों मनुष्य उसी ज्योति के मार्ग से आगे बढ़ते हैं। ब्रह्मज्ञ पुरुष ही लोक-गुरु बन सकते हैं, यह बात शास्त्र और युक्ति दोनों से प्रमाणित होती है। (६/२२-२३)

फिर, शक्ति संचारक गुरु के सम्बन्ध में तो और भी बड़े खतरों की सम्भावना है। बहुत से लोग ऐसे हैं, जो स्वयं तो बड़े अज्ञानी हैं, परन्तु फिर भी अहंकारवश अपने को सर्वज्ञ समझते हैं, इतना ही नहीं, बल्कि दूसरों को भी अपने कंधों पर ले जाने को तैयार रहते हैं। इस प्रकार अन्धा अन्धे का अगुवा बन जाता है, फलतः दोनों ही गड्ढे में गिर पड़ते हैं।

संसार ऐसे लोगों से भरा पड़ा है। हर एक आदमी गुरु होना चाहता है। एक भिखारी भी चाहता है कि वह लाखों का दान कर डाले ! जैसे हास्यास्पद ये भिखारी हैं, वैसे ही ये गुरु भी ! (४/१९)

आध्यात्मिक गुरु के द्वारा संप्रेषित जो ज्ञान आत्मा को प्राप्त होता है, उससे उच्चतर एवं पवित्र वस्तु और कुछ नहीं है। यदि मनुष्य पूर्ण योगी हो चुका है, तो वह स्वतः ही उसे प्राप्त हो जाता है। किन्तु पुस्तकों द्वारा उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। तुम संसार के चारों कोनों में – हिमालय, आल्प्स, काकेशस पर्वत अथवा गोबी या सहारा की मरुभूमि या समुद्र की तली में जाकर अपना सिर पटको, पर बिना गुरु मिले, तुम्हें वह ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। (९/२८-२९)

सम्पादकीय

मानसिक रोगों की औषधि : सद्गुरु की वाणी पर विश्वास

भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं – गुरु के वचन पर विश्वास होना चाहिये। गुरु सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। स्वयं भगवान ही गुरु हैं। यदि तुम गुरुवाक्य पर बालक की भाँति विश्वास करो, तो तुम भगवान को पा जाओगे। बालक का विश्वास कैसा तीव्र होता है। माँ ने कह दिया 'यह तेरा भाई है,' तो बच्चे को सोलह आना विश्वास हो गया कि 'यह व्यक्ति मेरा भाई है।' फिर भले ही वह ब्राह्मण का लड़का हो और वह व्यक्ति लोहार।[१]

जिस प्रकार माता-पिता की वाणी पर विश्वास कर एक अबोध शिशु अपनी जीवन-यात्रा प्रारम्भ करता है और कालान्तर में सुखी, सफल, एक परिपक्व सर्वगुणसम्पन्न मानव के शिखर तक पहुँचता है, उसी प्रकार गुरु की वाणी पर विश्वास कर अज्ञानी, दुखी और संसारबद्ध जीव भी ज्ञानी, सुखी और भवबन्धनों से मुक्त हो जाता है। गुरु-वचन शिष्य के लिये अमोघ, अकाट्य और अतर्क्य होता है। गुरु की वाणी पर अतर्क्य विश्वास करने से शिष्य सकल संशयरहित होकर गुरु द्वारा निर्दिष्ट इष्ट में तन्मय होता है और इष्ट के सच्चिदानन्दमय स्वरूप का दर्शन कर धन्य और कृतार्थ हो जाता है। इसीलिये आचार्य, ऋषि-मुनि गुरु की वाणी पर दृढ़ विश्वास कर साधना करने का निर्देश देते हैं।

संशयवृत्ति जीव को अधोगति में डाल देती है। संशयवृत्ति के नाश हेतु भगवान श्रीराम द्वारा किष्किंधा पर्वत पर लक्ष्मणजी को दिया गया उपदेश स्मरणीय है – **सदगुर मिलें जाहि जिमि संसय भ्रम समुदाई।।**[२] सद्गुरु के मिलने पर संशय का नाश हो जाता है। इस संसाररूपी महामारी, कुरोग से त्राण-प्राप्ति का एक ही उपाय है सद्गुरु की वाणी पर विश्वास करना। जब गरुड़जी संशय-सर्प से दंशित हो कागभुसुण्डीजी के पास पहुँचे, तब कागभुसुण्डीजी ने उन्हें कई प्रकार के उपदेश देकर उनके संशय-सर्प-दंशित विष को दूर कर उनमें भगवान श्रीराम के प्रति भक्ति वर्धित की थी। उस प्रसंग में उन्होंने सर्वाधिक कष्टकर मानसिक रोगों का निर्देश किया और उनसे बचने का बड़ा ही सुन्दर उपाय भी बताया, जो शिष्य के लिये आचरणीय है। गोस्वामीजी लिखते हैं –

मानसिक रोग

सुनहु तात अब मानस रोगा।
जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा।।
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।
काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा।।
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।।
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।[३]

कागभुसुण्डीजी गरुड़जी से कहते हैं, हे तात ! अब मानस रोगों के बारे में सुनिये, जिनसे सभी लोग दुख पाते हैं। सभी रोगों का मूल मोह (अज्ञान) है। उससे बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं। काम-वात, लोभ-कफ और क्रोध-पित्त है, जो सदा छाती को जलाता रहता है। इन तीनों के मिलने से दुखप्रद सन्निपात रोग होता है। कठिनाई से पूर्ण होनेवाली अनगिनत विषय-कामनाएँ कष्टप्रद शूल हैं। इतना ही नहीं, वे आगे कहते हैं –

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई।।
पर सुख देखि जरनि सोई छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।।
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी।।
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका।
कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।[४]
एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हि संतत जीव कहुँ सो किमि लहे समाधि।।[५]

– ममता-दाद, ईर्ष्या-खुजली और हर्ष-विषाद घेघ है। दूसरे का सुख देखकर हुई जलन से क्षयी और दुष्टता और मन की कुटिलता कोढ़ है। अहंकार अत्यन्त दुखद डमरू (गठिया) है, दम्भ, कपट, मद और मान स्नायु रोग है। तृष्णा जलोदर है, त्रिविध एषणा (पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा) प्रबल तिजारी है। मत्सर और विवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेकों बुरे रोग हैं। एक रोग के कारण ही लोग मर जाते हैं, किन्तु ये तो असाध्य रोग हैं, जो जीव को

निरन्तर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशा में उसे समाधि, शान्ति कैसे प्राप्त हो?

इतने प्रकार के रोगों की चर्चा करने के बाद कागभुसुण्डीजी ने कहा कि ये रोग असाध्य हैं, खतरनाक हैं, जल्दी ठीक नहीं होते। गोस्वामीजी आगे लिखते हैं –

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान।।[६]
एहि बिधि सकल जीव जग रोगी।
सोक हरष भय प्रीति बियोगी।।[७]

– नियम, धर्म, आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों औषधियाँ हैं। परन्तु हे गरुड़जी ! ये रोग उनसे नहीं जाते। इस प्रकार संसार के सभी जीव रोगी हैं, जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग के दुख से दुखित हो रहे हैं।

उन्होंने कहा कि ये रोग ज्ञात हो जाने पर कुछ कम हो जाते हैं, पर नष्ट नहीं होते। यहाँ तक कि ये विषय-कुपथ्य से मुनियों के हृदय में भी अंकुरित हो जाते हैं, साधारण लोगों की तो बात क्या है?

रोग-नाश के उपाय

इन रोगों के उपचार हेतु जो उपाय जन-साधारण में प्रचलित हैं, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, गोस्वामीजी कहते हैं, उससे ये रोग ठीक नहीं होंगे। तो इन रोगों का निदान कैसे होगा? कागभुसुण्डीजी कहते हैं –

रामकृपा नासहिं सब रोगा। जौं यहि भाँति बनै संयोगा।।
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा।।
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनुपान श्रद्धा मति पूरी।।
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं।
नाहीं त जतन कोटि नहिं जाहीं।।[८]

– श्रीरामजी की कृपा से यह संयोग बन जाये, तो ये सब रोग नष्ट हो जाएँ। सद्गुरु रूपी वैद्य के वचन में विश्वास हो, विषयों की आशा न करे, यही संयम हो। श्रीरामजी की भक्ति-संजीवनी जड़ी हो, श्रद्धालु बुद्धि का अनुपान हो, तो इस प्रकार के संयोग से भले ही रोग नष्ट हो जायँ, नहीं तो ये रोग कोटि प्रयत्न करने से भी नहीं जाते।

इसमें कागभुसुण्डीजी ने सद्गुरु रूपी बैद्य के वचन पर विश्वास का उल्लेख किया है। गुरु की वाणी पर विश्वास कर ही शबरी जी इतने वर्षों तक भगवान श्रीराम की बाट जोहती रहीं और अन्त में भगवान उनकी कुटिया में पहुँच कर उन्हें कृतार्थ करते हैं। नारदजी जैसे गुरु की बात पर विश्वास कर के ही पार्वतीजी ने तप से शिवजी को पति रूप में प्राप्त किया। जब सप्तर्षियों ने पार्वतीजी को शिवजी की भक्ति से विचलित करने के लिये नारदजी की बातों पर विश्वास नहीं करने को कहा, तो पार्वतीजी ने कहा –

गुरु के बचन प्रतीति न जेही।
सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।[९]

– जिसको गुरु के वचनों पर विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि सपने में भी सुगम नहीं होती।

श्रीरामकृष्ण देव ने गुरु पर विश्वास की एक अच्छी घटना भक्तों को सुनाई थी – एक आदमी को समुद्र पार कर लंका से भारत आना था। विभीषण ने उससे कहा, 'लो इस चीज को अपने कपड़े के एक छोर में बाँध लो। इसके बल पर तुम सहज ही समुद्र पार हो जाओगे। तुम पानी पर चल सकोगे। किन्तु ध्यान रखो, इसे देखने नहीं जाना कि यह वस्तु है क्या, नहीं तो डूब जाओगे।' वह व्यक्ति पानी पर सरलता से चलते हुए आगे बढ़ने लगा। विश्वास में ऐसा ही बल होता है। किन्तु कुछ दूर जाने के बाद उसके मन में कुतुहल हुआ – 'विभीषण ने ऐसी कौन-सी आश्चर्यजनक वस्तु दी है, जिसके बल पर मैं पानी के ऊपर से चला जा रहा हूँ? उसने गाँठ खोली और देखा, तो उसमें केवल एक पत्ता था, जिस पर राम का नाम लिखा था। उसने कहा –'बस यही !' और वह तत्काल डूब गया।''[१०]

एक बार कुछ भक्त और महात्मा रेलगाड़ी से यात्रा कर रहे थे। हठात् सबसे यात्रा के बीच में ही वृद्ध सन्त ने कहा कि सभी लोग इसी स्टेशन पर उतर जाओ। सभी बिना तर्क किये वहीं उतर गये। अगले स्टेशन पर गाड़ी की दुर्घटना में बहुत से लोग मर गये। महात्मा की बात मानने से इन सबके प्राण बच गये। सद्गुरु की वाणी पर विश्वास होने के कारण कितने अधम, अशान्त शिष्यों का जीवन उत्कृष्ट और दिव्य हो गया, उनके जीवन में शान्ति आ गयी, ऐसे कितने दृष्टान्त हैं। सर्वशान्तिसुख मूल गुरु हैं। गुरुनानक देव कहते हैं – 'गुरु के भक्तों को हृदय में सुख और शान्ति प्राप्त होती है। गुरुभक्त को सही ज्ञान और परमानन्द की

शेष भाग पृष्ठ ३८८ पर

भतरौड बिहारी मन्दिर : भगवान का लीलास्थान

राजकुमार गुप्ता, वृन्दावन

ब्रज ८४ कोस का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण की लीला न हुई हो। भगवान की लीला स्थलियों का प्रकाश भगवान के प्रिय भक्तों ने उन्हीं की कृपा से किया है। श्रीचैतन्य महाप्रभु के अनुयायी श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीनारायण गोस्वामी आदि भक्तों ने ध्यान में जाकर किस स्थान पर कौन-सी लीला हुई, यह बताया। भगवान की ही प्रेरणा से उन-उन स्थलों पर लीलाओं की स्मृति के रूप में मन्दिर, कुण्ड इत्यादि का निर्माण भक्तों ने किया। ऐसा ही एक लीला-स्थल श्री वृन्दावन धाम में भतरौड बिहारी मन्दिर भी है। पुराणों में इस स्थान को अशोक वन के नाम से जाना जाता है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार एक दिन भगवान श्रीकृष्ण बलरामजी और अन्य ग्वाल बालों के साथ गाय चराने वन में बहुत दूर निकल गये। इसलिए उनके लिए छाक (दोपहर का भोजन) नहीं पहुँचाया जा सका। अन्य दिनों नन्दगाँव के आसपास वनों में गाय चराते थे। वहाँ दोहरा की छाक सक्के घर से आ जाती थी। आज घर से बहुत दूर निकल आये थे। वे गायों के साथ अशोक वन में पहुँचे, जो यमुना के किनारे हरे-भरे वृक्षों से भरा था। गर्मी की ऋतु में भी वहाँ गर्मी का आभास नहीं होता था। समीप ही यमुना की निर्मल धारा बह रही थी। भगवान ने यमुना में गायों को शीतल जल पिलाया। सब ग्वाल-बालों ने भी यमुना का शीतल जल पिया। गायें हरी-हरी घासें चरने लगीं।

हरे-भरे वृक्षों को देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं से कहा – हे सखे, देखो इन वृक्षों का जीवन ही धन्य है। ये स्वयं तो गर्मी, वर्षा, घाम सहन करते हैं, पर दूसरों की रक्षा करते हैं। सच में इन्हीं का जीवन श्रेष्ठ है, क्योंकि इनके द्वारा सभी प्राणियों की सहायता होती है। इनके द्वारा दिये गये फल, फूल, लकड़ी, गोंद सब मनुष्य के काम आते हैं। वृक्षों का कोई भी अंग व्यर्थ नहीं जाता। पत्तों से लेकर पुष्पों, फलों तक का कोई न कोई उपयोग अवश्य होता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मित्रों, प्राणियों के जीवन की सफलता इसी में है कि उनके धन, वाणी, विवेक इत्यादि के द्वारा दूसरों की भलाई हो।

इन्हीं बातों में दोपहर तक का समय बीत गया। तब ग्वाल-बालों को भूख सताने लगी। वे भगवान श्रीकृष्ण और बलरामजी के पास आकर बोले – हे बलराम, हे श्यामसुन्दर, तुमने बड़े राक्षसों, दुष्टो से हमारी रक्षा की है। आज ये भूख रूपी राक्षसी भी हमें सता रही है। तुम दोनों इससे भी रक्षा की कोई व्यवस्था करो।

ग्वाल बालों की बात सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, मित्रों यहाँ से थोड़ी ही दूर पर मथुरा के वेदवादी ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं। तुम वहाँ जाओ और मेरा और बलरामजी का नाम लेकर कुछ भात माँग लाओ। ग्वाल-बालों ने यज्ञशाला में जाकर ब्राह्मणों को पृथ्वी पर लोट कर साष्टांग प्रणाम किया और कहा – 'हे ब्राह्मणो ! आपका कल्याण हो ! हम ब्रज के ग्वाल भगवान श्रीकृष्ण व बलराम के भेजने से आपके पास आये हैं। श्रीकृष्ण और बलरामजी गायें चराते हुए यहाँ से थोड़ी दूर पर आये हैं। वे भूखे हैं। यदि आपकी श्रद्धा हो, तो आप लोग थोड़ा भात दे दें। ब्राह्मण कुछ नहीं बोले, तो ग्वाल-बालों ने कहा – जिस यज्ञ में पशु बलि होती है, अथवा सौत्रमणि यज्ञ में मदिरा का प्रयोग होता है, इन दोनों को छोड़कर किसी भी यज्ञ में दीक्षित व्यक्ति का अन्न खाया जा सकता है। यह बात सुनकर भी ब्राह्मणों ने अनसुना कर दिया। न 'हाँ' कहा, न 'ना' कहा, अपने कार्यों में जुटे रहे। ग्वाल-बाल बहुत देर खड़े रहे, फिर निराश होकर लौट आये, आकर सब बात भगवान को निवेदित कर दी।

ग्वालों की बातें सुनकर भगवान ने हँसते हुए कहा कि संसार ऐसा ही है, इसमें सफलता-असफलता मिलती ही रहती है। सफलता मिलने पर अति हर्षित नहीं होना चाहिए तथा असफलता से निराश नहीं होना चाहिए। समता में रहकर प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस बार तुम ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाकर अन्न की याचना करो। मेरा और आर्य बलराम का नाम सुनकर वे अवश्य तुम्हें भोजन देंगी। वे मुझसे बड़ा प्रेम करती हैं।

ग्वाल-बालों ने पत्नी-शाला में जाकर ब्राह्मण पत्नियों को प्रणाम करके फिर वही बात कही कि भगवान श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ गाय चराते हुए यहाँ से थोड़ी दूरी पर आये हैं, वे बहुत भूखे हैं। उन्हीं के भेजने से हम आपके पास आये हैं। यदि आपको श्रद्धा हो, तो उनको व उनके साथियों के लिए थोड़ा भात दे दीजिए। वे ब्राह्मण पत्नियाँ दूध-दही बेचने आनेवाली गोपियों के माध्यम से भगवान की मनोहारी लीलायें सुन-सुनकर उनके दर्शनों को बड़ी उत्सुक हो गयी थीं। उनका मन भगवान के रूप-गुणों पर आसक्त हो चुका था। भगवान के पास में आने की बात सुनकर वे दर्शन के लिए उतावली हो गयीं। वे बोलीं, हम स्वयं उन्हें अपने हाथों भोजन देकर आयेंगी। ऐसा कहकर भात सजा-सजाकर वे ब्राह्मण पत्नियाँ भोज्य सामग्री लेकर चल दी। ग्वाल-बाल आगे-आगे रास्ता बताते चल रहे थे। उनके पतियों, भाई बन्धुओं व पुत्रों ने उन्हें रोकने की बहुत चेष्टा की, पर वे समुद्रगामिनी नदियों की भाँति किसी के रोके न रूकीं।

ब्राह्मण पत्नियों ने अभी जहाँ पर भातरौड बिहारी मन्दिर है, उस स्थान पर भगवान को देखा। वे वन में सखा के कंधे पर हाथ रखकर एक हाथ से कमल घुमा रहे थे। उनका सुनहरा पीताम्बर, सिर पर मोर-मुकुट, गले में वनमाला, नट जैसा सुन्दर वेश देखकर उनके मन की जलन मिट गयी। उन्होंने वन-मार्ग से भगवान को हदय में ले जाकर हृदय से आलिंगन किया। आज उनकी जन्म-जन्मान्तर की साध पूरी हुई।

भगवान तो अन्तर्यामी हैं। वे तो घट-घट की जानते हैं। विप्र पत्नियों की स्थिति उनसे छिपी नहीं रही। वे मुस्कुराते हुए बोले, देवियो ! तुम्हारा स्वागत है। हम तुम्हारी क्या सेवा करें? तुम मेरे दर्शन की इच्छा से यहाँ आई हो। तुम्हारी जैसी सहृदयाओं के लिए यह उचित ही है। संसार में अपनी सच्ची भलाई चाहनेवाले लोग मुझे प्रियतम के समान प्रेम करते हैं। उसमें किसी प्रकार की कामना नहीं होती। संसार की सभी वस्तुएँ – प्राण, मन, बुद्धि, शरीर, स्त्री, पुत्र और घर जिसके कारण प्रिय लगते है, वह परमात्मा मैं ही हूँ। मैं तुम्हारे प्रेम का अभिनन्दन करता हूँ। तुमलोग मेरा दर्शन कर चुकी, अब अपने घर

वापस चली जाओ। तुम्हारे पति गृहस्थ हैं। वे तुम्हारे साथ मिलकर ही अपना यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे।

ब्राह्मण पत्नियों ने कहा, प्रभो वेद कहते हैं कि आपके पास आकर फिर लौटना नहीं पड़ता 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'। हम तो अपने पति-पुत्रों; सबको छोड़कर आपकी शरण में आयी हैं। अपने पति-पुत्रों की आज्ञा के उल्लंघन के कारण अब वे हमें स्वीकार भी नहीं करेंगे। अब आपके चरणों में आकर हमें दूसरों की शरण में न जाना पड़े, ऐसी कृपा कीजिए।

भगवान ने कहा कि अब तुम मेरी हो गयी हो। मुझसे युक्त हो गई हो, इसलिए कोई भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेगा। तुम्हारे पति तुम्हारा सम्मान करेंगे, जाओ उनका यज्ञ पूरा करने में सहयोग करो। केवल अंग-संग से ही मेरी प्राप्ति नहीं होती। अपना मन मुझमें लगा दो। तुम्हें शीघ्र मेरी प्राप्ति हो जायेगी। भगवान की आज्ञा से वे ब्राह्मण पत्नियाँ यज्ञशाला में अपने पतियों के पास लौट गईं। उनके लाये हुए भोजन को स्वीकार कर पत्तों इत्यादि पर रख लिया था।

जब ब्राह्मणों को मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान हैं। वे पूर्णकाम हैं। उन्होंने अन्न माँगने की लीला करके हमें सचेत करने की कृपा की। वे अपने को धिक्कारने लगे। हमारा वेद-पाठ व्यर्थ गया। हम तो पंडित मूर्ख ही हैं। हमसे तो अच्छी हमारी पत्नियाँ ही हैं। वे गुरुकुल में नहीं गयीं, वेद नहीं पढ़ीं, न उनके द्विजोचित संस्कार ही हुए। फिर भी उनमें भगवान के प्रति कैसी दृढ़ भक्ति है। अब भी भगवान कोई दूर थोड़े ही गये थे। परन्तु वे ब्राह्मण कंस के भय से भगवान के दर्शन को न जा सके। अन्त में यह कहकर कि हम भक्त स्त्रियों के पति हैं, अपने को समझा लिया। इस प्रकार भगवान ने याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों पर कृपा की।

ब्राह्मण पत्नियों द्वारा लाया गया भोजन उनके जाने के बाद भगवान श्रीकृष्ण एवं बलराम जी ने ग्वाल-बालों को खिलाया तथा स्वयं भी खाया। जिस स्थान पर भगवान ने भोजन किया उस स्थान पर आज भतरौड (भात खानेवाले भगवान) का मन्दिर है। यह स्थान वर्तमान में यमुनाजी से लगभग ६०० मीटर की दूरी पर है। भगवान के समय यमुनाजी यहाँ से बहती रही होंगी। अब थोड़ी दूर हट गयी हैं। यह मन्दिर १०० सैय्या अस्पताल से लगभग ८०० मीटर की दूरी पर है। पास में ही काशीराम कॉलोनी उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा बनाई गई है। वृन्दावन मांट मार्ग पर से जो मार्ग काशीराम कॉलोनी को जाता है। मुख्य मार्ग से लगभग १५० मीटर पर यह भतरौड बिहारी मन्दिर भगवान की यज्ञ-पत्नियों पर की गई कृपा का साक्षी बना आज भी भक्तों को भगवान की कृपालुता की याद दिला रहा है। वृन्दावन आयें, तो भतरौड बिहारी भगवान के दर्शन अवश्य करें। ○○○

कविता

गुरु पद कमल शत शत वन्दन

आनन्द तिवारी 'पौराणिक'

गुरु पद कमल शत शत वन्दन ।
पत्र, पुष्प, फल, नैवेद्य अर्पण ।।
अज्ञान, मोह, माया मन कलुषित,
विषय दोष अपावन तन दूषित ।
जगत प्रपंच, स्वार्थ पथ भटकन,
घोर निराशा दुख और उलझन,
सनमार्ग दिखाओ स्वामी, राखो शरण ।।
गुरु पद कमल ... ।
ज्ञान प्रकाश हृदय में भर दो
जीवन पथ ज्योतिर्मय कर दो
भाव भक्ति विश्वास जगाकर
इस जनम को सफल बनाकर
अन्तःचक्षु खोलो, हो हरि दर्शन ।
गुरु पद कमल ... ।

सारगाछी की स्मृतियाँ (१२८)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

दोपहर में 'रामकृष्ण पूँथी' का पाठ हो रहा है – दक्षिणेश्वर में केशव के आगमन का प्रंसग है –

''मनुज बुद्धि अति क्षुद्र-तुच्छ,
असमर्थ ईश-धारणा-विचार।
फिर वे ईश्वर कैसे रह सकते,
लेकर प्रतिमा का आकार।।''

उस प्रसंग में ठाकुर जो कहते हैं, उसी का पाठ हो रहा है। महाराज के नेत्रों और मुखमण्डल को देखकर ऐसा लगता है, मानो वे भाव के आवेग को संयत कर रहे हैं।

सेवक – श्रीमाँ से दीक्षा लेकर आपके मन में कैसा लगा था?

महाराज – मन में कुछ भी नहीं उठा। ऐसा लगा कि मैं मुक्त हो गया हूँ, अब मुझे और कुछ भी साधन-भजन नहीं करना होगा।

सेवक – आपने कितने दिन तक माला से जप किया?

महाराज – दीक्षा लेने के कुछ दिनों बाद जप की माला तैयार करने का प्रयास किया। पहले (पूर्वाश्रम में) गर्भधारिणी माँ को माला गूँथकर देता था, किन्तु अपनी माला गूँथते समय वह टूट गई, बहुत से संकट आए। फिर माला से जप करना छोड़ दिया। सोचा कि मुझे अब इन सब चीजों की आवश्यकता नहीं है। यही सब शरारत किया है, इसीलिए तो आज कष्ट पा रहा हूँ।

१५-०३-१९६५

सेवक – उत्सव में ठाकुर के मन्दिर में तो बहुत भीड़ होती है, क्या उस समय ठाकुर को प्रणाम करने जाना अच्छा है? उस समय वहाँ बहुत-सी महिलाएँ रहती हैं।

महाराज – क्या आवश्यकता है? ठाकुर तो सदा-सर्वदा ही हमारे हैं।

१८-०३-१९६५

सेवक – अच्छा, केदार मन्दिर में ठाकुर को अधिक भाव-समाधि हुई थी, विश्वनाथ मन्दिर से भी अधिक। तो क्या केदार मन्दिर में उनका अधिक प्रकाश है?

महाराज – इसका दो प्रकार का अर्थ हो सकता है –

१. केदार मंदिर में उनका अधिक प्रकाश है।

२. विश्वनाथजी तो लोगों में प्रसिद्ध हैं ही, केदार मन्दिर को भी उन्होंने लोगों के बीच अभिव्यक्त किया। अवतारगण आकर इसी तरह लुप्त तीर्थ का उद्धार करते हैं, जैसे श्रीमाँ ने सिंहवाहिनी को जाग्रत किया।

सेवक – महाराज, ठाकुर के पार्षदों में उनके शरीरों का रंग कैसा-कैसा था?

महाराज – स्वामीजी – गौर वर्ण, ब्रह्मानन्दजी – गौरवर्ण (प्रेमानन्दजी से थोड़े कम), प्रेमानन्दजी – गौर वर्ण (तुरीयानन्दजी से अधिक), शिवानन्दजी – गौर वर्ण (ब्रह्मानन्दजी के समान अधिक), सारदानन्दजी – काले (साँवले रंग के), अभेदानन्दजी – काले, अद्‌भुतानन्दजी – काले, तुरीयानन्दजी (उज्ज्वल गौर वर्ण), सुबोधानन्दजी गौर वर्ण (हरि महाराज की तरह नहीं, किन्तु महापुरुष महाराज की तरह), अखण्डानन्दजी – साँवले, विज्ञानानन्दजी – साँवले। इन लोगों को बहुत दिनों पहले देखा हूँ, यह पूरी तरह सटीक नहीं भी हो सकता है। गिरीश बाबू – गौर वर्ण, रामलाल दादा – गौर वर्ण, मास्टर महाशय – गौर वर्ण, देवेन मजूमदार – गौर वर्ण, अक्षय मास्टर – काले।

यह वर्णन समाप्त होने पर महाराज मन में गुनगुनाते हुए गाने लगे –

माँ कहकर अब और पुकारो न भाई।
माँ को कहाँ पाओगे रे भाई।।

रहने से तो वह गोद में लेती।
वह सर्वनाशी जिन्दा ही नहीं।।
विमाता की गोद में जाकर।
कुशनिर्मित पुतला दाह करके।।
अशौच के बाद पिण्ड दान कर।
मरणाशौच में काशी जाऊँ।।

(मरणाशौच १३ दिन या १ माह या १ वर्ष तक का होता है।)

२०-०३-१९६५

सेवक – वह जो नवयुवक अभी गया है – नवीन ब्राह्मण है।

महाराज – उपनयन अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम – इसमें यज्ञोपवीत (जनेऊ) दिया जाता है। हमलोगों का भी चारों आश्रमों का समन्वय है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ का कार्य भी करना पड़ता है, (यहाँ) मेरे जैसे वानप्रस्थी और गोपेश की तरह दो-चार संन्यासी लोग हैं। तुमने नवीन सेन का 'प्रभासतीर्थ' पढ़ा है?

सेवक – नहीं महाराज।

महाराज – अद्‌भुत पुस्तक है। एक बार पढ़कर देखो (ऐसा कहते हुए महाराज ने पूरे एक पृष्ठ की हूबहू आवृत्ति करके सुनाई। तदुपरान्त, रवीन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा रचित एक कविता सुनाई, जिसमें सर्वव्यापित्व का भाव निहित है।)

सेवक – महाराज, आपने 'आज कोकिल कूजने' नामक गान कैसे गाया, थोड़ा गाकर सुनाइए।

(सेवक के आग्रह को तुष्ट करने हेतु महाराज ने उसकी एक पंक्ति गाई। सेवक का साहस बढ़ गया। अब सेवक ने कहा – 'तुम आए फागुन में', यह गान थोड़ा सुनाइए। महाराज ने उसकी भी एक पंक्ति गाकर सुनाई। अधिक उत्साह पाकर सेवक ने कहा – 'अरूपसायरे' गाना सुनाइए। उसकी प्रथम पंक्ति को गाते ही महाराज का गला रुद्ध हो गया, नेत्र डबडबा गए। वे बोले – वृद्धावस्था के कारण जल्दी से भावावेश से ग्रस्त हो जाता हूँ, संयम-शक्ति कम हो गई है। मैं करवट बदलकर सोता हूँ, तुम मेरी पीठ पर हाथ से थोड़ा सहला दो।

२२-३-१९६५

दोपहर के भोजन के बाद महाराज पश्चिम के बरामदे में पेराम्बुलेटर पर बैठे हैं। सेवक पुरानी डायरी से पाठ कर रहा है।

महाराज – इतनी सब बातें जानते हो, जहाँ बहुत से लोग बातें करते हैं, वहाँ दो-चार बातें कहने से वह बात विशेष अतीव सूक्ष्म बुद्धि का परिचय देती है और उससे तुम्हें लोग ज्ञानी भी समझ सकते हैं। इन सब बातों से वस्तुत: सबके गुण-दोष देखने की क्षमता आती है, अन्यथा मेरी तरह केवल बोलना ही सार रह जाएगा। किन्तु बिना बोले चुप रहना ही अच्छा है, क्योंकि गूँगे का कोई शत्रु नहीं होता – 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी।' यहाँ के समान बड़े-बड़े आश्रम में रहने की सुविधा-असुविधा दोनों ही होती है। यहाँ कोई किसी के चक्कर में नहीं रहता है। अत: तुम अपने भाव में रह सकते हो और यदि मिलने-जुलने की इच्छा रखते हो, तो यहाँ उसकी अनन्त खुराक पाओगे।

२७.०३.१९६५

ललित महाराज – ज्ञानमिश्रित भक्ति और प्रेममिश्रित भक्ति में से कौन-सी अच्छी है?

महाराज – ज्ञानमिश्रित भक्ति से मेरे ठाकुर क्या हैं, इसका ज्ञान होता है, बाद में वे सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान हैं। प्रेममिश्रित भक्ति में उनके प्रति अपनत्व का बोध होता है। ठाकुर अन्तिम समय में जब कुछ खा नहीं सकते थे, तब सभी लोग उनसे माँ काली से खाने की सुविधा पाने की प्रार्थना करने का आग्रह करने लगे, यह बात तो जानते ही हो। माँ काली ने कहा – क्यों, तुम तो इतने मुखों से खा रहे हो? बाबूराम महाराज ने कहा – आपका लाख-करोड़ मैं नहीं समझता, मैं चाहता हूँ कि आप इसी मुख से खाओ। यह प्रेमाभक्ति है। किन्तु प्रेमाभक्ति के पहले ब्रह्मज्ञान होना चाहिए। **(क्रमश:)**

गुरु मानो मध्यस्थ हैं। जैसे मध्यस्थ प्रेमिक को प्रेमिक के साथ मिला देता है, वैसे ही गुरु भी साधक को इष्ट के साथ मिला देते हैं।

गुरु मानो गंगाजी हैं। गंगा में लोग कितना कूड़ा करकट और गन्दी चीजें डालते हैं, परन्तु इससे उसकी पवित्रता घट नहीं जाती। इसी प्रकार गुरु पर भी निन्दा, अपमान आदि बातों का परिणाम नहीं होता। — श्रीरामकृष्ण देव

अज्ञात संन्यासी से विश्वविजयी विवेकानन्द होने की यात्रा में अलमोड़ा का योगदान

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

उत्तराखण्ड के एक छोटे पहाड़ी नगर अलमोड़ा में सन् १८९० में एक संन्यासी का प्रवेश होता है, फिर ७ वर्ष बाद वही संन्यासी विश्वविजयी विवेकानन्द के रूप में इसी शहर में मखमली कालीनों पर चढ़कर तुमुल हर्षध्वनि के साथ पदार्पण करता है और कहता है – 'यह वही स्थान है, जहाँ मैं बचपन से ही अपना जीवन व्यतीत करने की सोच रहा हूँ।'

इस स्थान के प्रति स्वामीजी का स्नेह या आकर्षण केवल कहने भर की बात नहीं, अपितु अपनी महान विजय यात्रा में इसे भागीदार बनाने का प्रमाण है। यह कैसे सम्भव हुआ, इसके लिये हमें उनकी तीन अलमोड़ा यात्राओं और उस समय हुए उनके अनुभवों व घटनाओं का विवेचन करना होगा। हमें यह समझना होगा कि किस प्रकार इस छोटे-से नगर व इसके आसपास घटी घटनायें बीज रूप में घटित हुईं और वे आगे चलकर विशाल वटवृक्ष बनकर आच्छादित हो गईं।

सर्वप्रथम हम उन्हें अज्ञात संन्यासी के रूप में सन् १८९० में अपने गुरुभाई अखण्डानन्दजी के साथ अलमोड़ा में देखते हैं। अलमोड़ा पहुँचने से पूर्व २४ कि.मी. दूर कोसी नदी के तट पर काकड़ी घाट नामक स्थान पर एक पीपल वृक्ष के नीचे उन्हें महान आध्यात्मिक अनुभूति होती है। इसके बार में वे अपने गुरुभाई से कहते हैं, 'आज एक बड़ी समस्या का समाधान हो गया। मैंने जान लिया कि विश्व-ब्रह्माण्ड और अणु-ब्रह्माण्ड दोनों एक ही नियम से परिचालित होते हैं।''[१]

इस अनुभूति को एक बीज कहा जा सकता है, जो उनके पश्चिमी देशों में दिये व्याख्यानों में अभिव्यक्त हुई। जैसे १९ जनवरी, १८९६ को न्यूयार्क में 'विश्व बृहत् ब्रह्माण्ड' शीर्षक से दिये व्याख्यान में उन्होंने कहा, ''वह जगत का उपादान और निमित्त कारण है, क्रम संकुचित होकर वही अणु का रूप धारण करता और फिर वही क्रम विकसित होकर पुन: ईश्वर बन जाता है।''[२] सन १८९५ में अपनी शिष्य मण्डली के सम्मुख संत जॉन कृत 'सुसमाचार' की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा, 'आदि में शब्द ब्रह्म था, वह शब्द ब्रह्म के साथ विद्यमान था और वह शब्द ही ब्रह्म के साथ विद्यमान था और वह शब्द ही ब्रह्म है। हिन्दू लोग इसको माया या ब्रह्म का व्यक्त भाव कहते हैं।''[३]

'काकड़ीघाट' की अनुभूति के बाद वे अलमोड़ा के निकट 'करबला' नामक स्थान पर भूख प्यास से, थकान से, निढाल हो जाते हैं। एक मुसलमान फकीर द्वारा उन्हें ककड़ी खिलाकर उनकी प्राण-रक्षा की जाती है। जब वे उससे ककड़ी तोड़कर

कसार देवी मन्दिर

कसार देवी

कसार देवी गुफा

मुख में देने को कहते हैं, तो वह संकोचवश अपनी विवशता जताता है। इस पर स्वामीजी के मुँह से अचानक निकल पड़ता है – 'तो इसमें क्या हुआ, क्या हम सब भाई नहीं है?' यही वाणी विशाल आकार धारण कर ११ सितम्बर, १८९३ में शिकागो धर्ममहासभा के मंच से 'मेरे अमेरिकन बहनो और भाइयो' के रूप में गूँज उठी, जिसने प्रत्येक को तालियाँ बजाने पर विवश कर दिया था।

इस प्रवास के दौरान वे अलमोड़ा नगर से कुछ दूरी पर स्थित 'कसार देवी' पहाड़ी की एक गुफा में साधना के लिए गये, किन्तु 'सर्वोच्च आध्यात्मिक अवस्था' को प्राप्त करने के उनके सारे प्रयास विफल हो गये। उनके हृदय पट उन्मुक्त नहीं हुए और वे तनाव से भर उठे। इसी समय उनके भीतर अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण देव के शब्द जाग्रत हो उठे, जिन्हें उन्होंने अपनी अन्त्य लीला के समय कहा था। जब उनसे गुरुदेव ने पूछा था, तू क्या चाहता है और उन्होंने कहा था निर्विकल्प समाधि में निरन्तर डूब जाना। इस पर श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'मैंने सोचा था, कहाँ तू एक विशाल वट वृक्ष की भाँति होगा। तुम्हारी छाया में हजारों लोग आश्रय पायेंगे और कहाँ तू ऐसा न होकर अपनी मुक्ति चाहता है ! यह तो अत्यन्त तुच्छ बात है। नहीं रे ! इतनी छोटी दृष्टि मत रख।''[४] इस बात का स्मरण होते ही स्वामीजी के भीतर अपने गुरुदेव के कार्य हेतु प्रबल आकर्षण का अनुभव हुआ और वे सर्वजनमुक्ति-महायज्ञ में आहुति देने को प्रस्तुत हुए और प्रसन्नचित्त अलमोड़ा लौट आए। इस प्रकार अलमोड़ा को ही यह श्रेय जाता है, जहाँ से स्वामीजी भावी कार्य हेतु संकल्पबद्ध होकर भारत-भ्रमण पर निकल पड़े और आगे चलकर वे उसी वट-वृक्ष के रूप में प्रतिष्ठापित हुए, जैसे उनके गुरुदेव चाहते थे।

अलमोड़ा वापस लौटकर उन्हें अपनी बहन की आत्महत्या का दुखद समाचार प्राप्त हुआ, जिसने उन्हें आघातित तो किया ही, साथ ही कुछ सोचने को बाध्य कर दिया। भारत की नारियों की संकटग्रस्त दशा के उन्नयन हेतु कुछ करने का संकल्प लिये वे अलमोड़ा से चल पड़े। कहना न होगा कि इसी संकल्प ने आगे चलकर भगिनी निवेदिता को भारत की सेवा के लिए लाने और नारी-शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने में लगा दिया। इसी प्यास ने आगे चलकर नारियों के लिये सारदा मठ की स्थापना को जन्म दिया, जिसकी एक शाखा आज अलमोड़ा के उसी कसार देवी पर्वत पर स्थित है, जहाँ स्वामीजी ने ध्यान किया था। इस प्रकार अलमोड़ा की धरती से भावी विवेकानन्द के कार्यों का बीजारोपण हुआ, यह कहने में कोई संकोच नहीं है।

स्वामीजी की अलमोड़ा यात्राओं के दौरान उनके अनेक गुरुभाइयों ने भी अलमोड़ा में तपस्या की। 'पाताल देवी' नामक मन्दिर के पास स्वामी सारदानन्द और शिवानन्द जी महाराज जब तपस्या कर रहे थे, तब इंग्लैंड के एक साधक स्टर्डी महोदय का उनसे परिचय हुआ था। इन गुरुभाइयों से मुँह से उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के बारे में जाना और इंग्लैंड लौटकर स्वामीजी को लन्दन आदि स्थानों पर वेदान्त प्रचार के लिए आमंत्रित किया और वे स्वामीजी के सहायक बने थे, जिसकी नींव भी अलमोड़ा में ही पड़ी। इस बारे में (युगनायक विवेकानन्द खंड-२) पृ.१९० पर लिखा गया है – श्री ई.टी.स्टर्डी हिन्दू भावों से अनुप्राणित थे तथा किसी समय उन्होंने अलमोड़ा अंचल में तपस्या की थी। इनकी मित्रता स्वामीजी के लिये बड़ी फलदायी सिद्ध हुई।

आज से १२५ वर्ष पूर्व ११ मई, १८९७ को स्वामीजी दूसरी बार अलमोड़ा आते हैं, परन्तु इस बार विश्वविजयी विवेकानन्द के रूप में भव्य स्वागत के बाद अलमोड़ावासियों की सभा में वे सार्वजनिक रूप में अपने हिमालय मठ के संकल्प की घोषणा करते हैं, जो आगे चलकर पहले अलमोड़ा फिर मायावती में स्थापित होता है। इस ८१ दिनों

देउलधार

के सबसे लम्बे प्रवास में वे ४७ दिन यहाँ से दूर देउलधार नामक स्थान में निर्जन में विश्राम में बिताते हैं। इस दौरान वे अनेक पत्र लिखकर अपनी बातों से हमें अचम्भित करते हैं। ऐसे २२ पत्र उनकी पत्रावली में संग्रहित हैं। यहाँ हम उन्हें एक नए रूप में पाते हैं। ऐसा लगता है, वे अपना

लीला-अभिनय समेटने की ओर बढ़ रहे हैं, उसी अलमोड़ा की भूमि से जहाँ से उन्होंने इसका शुभारम्भ किया था। हम कुछ पत्रों और उनकी देववाणी से इसका प्रमाण देखेंगे। ९ जुलाई, १८९७ को वे कु. मेरी हेल को लिखते हैं –

''मैं जानता हूँ मेरा कार्य समाप्त हो चुका है। अधिक से अधिक तीन या चार वर्ष आयु और बची है। मुझे अपनी मुक्ति की इच्छा बिल्कुल नहीं है, मुझे केवल अपने यन्त्र को मजबूत और कार्योपयोगी देखना है।''

इसी पत्र में वे आगे लिख रहे हैं ''मेरी अभिलाषा है, मैं बार-बार जन्म लूँ और हजारों दुख भोगता रहूँ, ताकि मैं उस ...ईश्वर की पूजा कर सकूँ, जिसकी सचमुच सत्ता है। ...सबसे बढ़कर सभी जातियों और वर्णों के पापी, तापी और दरिद्र रूपी ईश्वर ही मेरा विशेष उपास्य है।''

स्वामीजी निवेदिता को आशीर्वाद देते हुए

इसी पत्र में वे अपने बारे में रहस्योद्घाटन करते हुए लिख रहे हैं – ''लोग क्या कहते हैं, इसकी मुझे क्या परवाह ! वे तो अबोध बालक हैं – मैं जो कि आत्मा का साक्षात्कार कर चुका हूँ, क्या बच्चों की तोतली बोलियों से अपने मार्ग से हट जाऊँ? ...मेरे पीछे जो शक्ति है, वह विवेकानन्द नहीं स्वयं ईश्वर है और वही सबसे ठीक जानता है।''[५]

भारत की नारियों, विशेष कर शिक्षा के क्षेत्र में उनके उत्थान के लिए वे भगिनी निवेदिता को आमंत्रित करते हैं, किन्तु उनके सामने अनेक चुनौतियाँ थीं, जिन्हें दूर करना आवश्यक था। अलमोड़ा के इस प्रवास में वे इन समस्याओं के समाधान का प्रयास करते हुए उन्हें लिखते हैं, ''मुझे विश्वास है कि भारत के काम में तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। आवश्यकता है नारी की, पुरुष की नहीं, सच्ची सिंहनी की, जो भारतियों के लिए, विशेषकर नारियों के लिए काम करे। ... परन्तु कठिनाइयाँ भी बहुत हैं। यहाँ जो दुख, कुसंस्कार और दासत्व है, उसकी तुम कल्पना नहीं कर सकती।''[६]

इसी प्रकार अपने गुरुभाई अखण्डानन्द द्वारा राहत-कार्य करने का समाचार पाकर उन्मुक्त हृदय से उन्हें आशीर्वाद देते हुए लिखते हैं, ''इसी प्रकार के कार्य द्वारा जगत पर विजय प्राप्त किया जा सकता है। शाबाश ! मेरे लाखों आलिंगन और आशीर्वाद स्वीकार करो। कर्म, कर्म, कर्म मुझे और किसी चीज की परवाह नहीं है।'' इसी पत्र के अन्त में वे अलमोड़ा के इस विश्राम पर्व के समापन का संकेत दे रहे हैं और कर्म के प्रति छटपटाहट प्रकट करते हुए लिखते हैं, ''मैं शीघ्र ही नीचे (मैदानी क्षेत्र में) जानेवाला हूँ। मैं योद्धा हूँ और रणक्षेत्र में ही मरूँगा। क्या मुझे यहाँ पर्दानशीन औरत की तरह बैठना शोभा देता है?''[७]

कर्म के प्रति अपने समर्पण को शब्द देकर उन्होंने जिस महायज्ञ का शुभारम्भ किया था, उसे गति देने का कोई अवसर वे चूकना नहीं चाहते थे। इसलिए हिमालय के शान्त, नीरव, निर्जन में भी वे जगत को कर्मवीर होने का संदेश देते जा रहे थे, जिसके लिए उन्होंने इतना प्राणपण परिश्रम किया था कि इतनी कम आयु में ही उनका स्वास्थ्य टूट गया था। किन्तु उनका साहस अक्षुण्ण था और वे जीवन के अन्तिम क्षण तक इसी प्रकार योद्धा विवेकानन्द होकर आत्मोत्सर्ग करना चाहते थे। अलमोड़ा से लिखे उनके इन पत्रों से यही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है।

एक वर्ष बाद १७ मई, १८९८ को वे तीसरी व अन्तिम बार अपने गुरुभाइयों व पश्चिमी देशों से आए शिष्यों व शिष्याओं के साथ अलमोड़ा आते हैं, जिनमें सेवियर दम्पती व भगिनी निवेदिता तथा मैक्लाउड प्रमुख थीं।

वे अलमोड़ा के पश्चिमी छोर पर स्थित 'थामसन हाउस' और शिष्यायें पास ही 'ओकले हाउस' में ठहरायी जाती हैं। इस प्रवास को शिष्याओं के शिक्षण-प्रशिक्षण को समर्पित माना जा सकता है, जिसके अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी, निवेदिता को महान आशीर्वाद या स्पर्श कर ज्ञान

ओकले हाउस

प्रकाश देना कहा जा सकता है। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निष्ठा और भारत की सेवा के संकल्प से निवेदिता के मन में उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व को स्वामीजी अपने शुभ आशीर्वाद से सदा के लिए दूर कर देते हैं। उनकी एक बड़ी समस्या का समाधान हो जाता है और वे स्वयं को पूरी तरह स्वामीजी के कार्य हेतु समर्पित कर देती हैं। इस घटना का साक्षी भी अलमोड़ा ही बनता है।

इस प्रवास के अन्तिम भाग में स्वामीजी को कई शोक समाचारों से आघातित होना पड़ता है। इनमें उनके आशुलिपिकार गुडविन और 'प्रबुद्ध भारत' मद्रास के सम्पादक राजम अय्यर के आकस्मिक निधन प्रमुख थे। किन्तु स्वामीजी का एक निर्णय नये युग को प्रारम्भ करता है। वे निश्चय करते हैं कि कैप्टेन सेवियर और स्वरूपानन्द अलमोड़ा से 'प्रबुद्ध भारत' को पुनर्जीवित करें। इसी के साथ अलमोड़ा के थामसन हाऊस को स्वामीजी के प्रथम हिमालय मठ और 'प्रबुद्ध भारत' के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन का गौरव मिलता है, जहाँ से अगस्त १८९८ में इसका पहला अंक प्रकाशित होता है। बाद में तब अलमोड़ा में ही स्थित मायावती में स्वामीजी का मठ अद्वैत आश्रम स्थापित होता है, जहाँ वे कुछ दिनों के लिए निवास करते हैं। उनकी ही इच्छा

अद्वैत आश्रम मायावती

से १९१५ में श्यामलाताल और १९१६ में श्रीरामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा की स्थापना होती है, जो आज उनकी स्मृतियों को अक्षुण्ण रखने में लगी हैं। परन्तु अलमोड़ा को ही यह श्रेय दिया जाना चाहिए कि वह स्वामीजी के इस युगान्तकारी कार्यों में काम आया।

अलमोड़ा से सदा के लिए विदा लेने से पूर्व स्वामीजी उस पर्वत शिखर पर तीन दिन ध्यानस्थ रहे, जिसके पाद प्रदेश को कोसी नदी प्रक्षालित करती हुई उस काकड़ी घाट से आगे बढ़ जाती है, जहाँ स्वामीजी को एक विशेष आध्यात्मिक अनुभूति हुई थी। वह था स्याही देवी का पहाड़,

स्याही देवी

जो अलमोड़ा के पश्चिम में स्थित है। इस पर्वत पर साधना से लौटने पर स्वामीजी ने कहा था – वे अभी भी वही सनातन धर्म के आदर्श संन्यासी हैं, जो 'करतल भिक्षा तरु तलवास' करते हुए विचरण करते रहे हैं। पाश्चात्य देशों का निवास उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचा पाया है। इस संतोष के साथ वे ११ जून, १८९८ को अलमोड़ा से विदा लेते हैं।

अलमोड़ा को स्वामीजी का जितना स्नेह मिला, सम्भवत: अन्य किसी पहाड़ी नगर को नहीं मिला। ऐसा हो भी क्यों नहीं, क्योंकि यही वह स्थान है, जहाँ से उन्होंने अपने कर्म यज्ञ का आरम्भ करने का संकल्प किया था। अलमोड़ा व स्वामी विवेकानन्द एक दूसरे से इस तरह जुड़ गये कि एक के बिना दूसरे का स्मरण अधूरा लगता है। उनके कारण यह छोटा-सा नगर विश्व में जाना पहचाना जाने लगा। उन्हीं के कारण यह नगर सदा-सदा के लिए श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से जुड़े संन्यासियों व अनुगत भक्तों के लिये तीर्थ बनकर रह गया, जहाँ सर्वदा उनका आवागमन लगा रहता है। उन्हीं के कारण इस सुन्दर पहाड़ी की आध्यात्मिक उर्जा और प्राकृतिक सौन्दर्य में कोई कमी नहीं आती है। ऐसे महानायक शिवावतार स्वामी विवेकानन्द को नन्दा, सुनन्दा की लीला भूमि अलमोड़ा और अलमोड़ावासियों का शत-शत प्रणाम ! ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. युगनायक विवेकानन्द खण्ड १ पृ. २४८ **२.** विवेकानन्द साहित्य खण्ड २ पृ. १०७ **३.** वही, खण्ड ७ पृ. ७ **४.** युगनायक विवेकानन्द खण्ड १ पृ. १६३ **५.** विवेकानन्द साहित्य खण्ड ६ पृ. ३४४-३४५ **६.** वही खण्ड ६ पृ. ३६०-३६१ **७.** वही, खण्ड ६ पृ. ३३५-३३६

गुरु पूर्णिमा विशेष

शबरी की गुरु-भक्ति

संजय सिंह, बिलासपुर

बच्चो, आज हम जानेंगे कि हमारे जीवन में गुरु का क्या महत्त्व है? गुरु का वह महत्त्व होता है, जो वायुमण्डल में हवा का होता है, जो हमें श्वास देता है। गुरु का महत्त्व सूरज और बादल की तरह होता है, जो हमें बिन माँगे ऊर्जा और प्रकाश देता है। बादल हमें बिना कुछ कहे पानी देता है, यह हमारे लिये जीवनदायी है। इसी प्रकार बच्चो गुरु भी बिना कुछ माँगे और पूछे ज्ञान देते हैं, ताकि हम आगे बढ़ सकें। आप सफल होते है, तो गुरु का यश बढ़ता है। इसीलिए गुरु हमेशा महान होते हैं। बच्चो, भगवान होते हैं, यह बतानेवाले गुरु ही होते हैं।

बच्चो, सनातन संस्कृति में गुरु को हमेशा से ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश के समान पूज्य माना गया है। महर्षि वेद व्यासजी का जन्म आषाढ़ पूर्णिमा को लगभग ३००० ई. पू. में हुआ था। उन्हीं के सम्मान में हर वर्ष आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को गुरुपूर्णिमा का पर्व मनाया जाता है। कहा जाता है, इसी दिन व्यासजी ने शिष्यों और मुनियों को सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत पुराण का ज्ञान दिया था। इसीलिए इस दिन को व्यास पूर्णिमा के नाम से भी जाना जाता है। उन्होंने वेद का व्यास (विस्तार) किया अर्थात् चार भागों – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में विभक्त किया। इसीलिए बच्चों वे वेद व्यास के नाम से विख्यात हुए।

बच्चो ! आप रामायण की शबरी माता को तो जानते ही होंगे, जिन्होंने अपनी गुरु-भक्ति, गुरु-सेवा, धैर्य और श्रद्धा से भगवान राम के दर्शन प्राप्त किये।

माता शबरी अपने गुरुजी मतंग मुनि की सेवा सम्पूर्ण मन-प्राण से करती थीं। वे गुरु के लिए भोजन पकातीं, उनके बर्तन धोतीं। वे अपने गुरु के प्रति इतनी समर्पित थीं कि जिस रास्ते में गुरु निकलते, वहाँ झाड़ू लगा देतीं और ये सारे कार्य वे अपने गुरु को बिना बताये ही पूरी कर लेतीं और आनन्दित होती थीं।

मतंग मुनि जब इस संसार को छोड़ ब्रह्मलीन होने लगे, तब माता शबरी ने कहा – गुरुजी, मैं भी आप के साथ चलूँगी। तब गुरुजी बोले – नहीं, तू अपनी कुटिया में रहना और रोज झाड़ू लगा कर रास्ता साफ करते रहना, वे (राम) अवश्य आएँगे।

माता शबरी ने पूछा – 'गुरुजी, मैं उन्हें कैसे पहचानूँगी?'

गुरुजी बोले – दो भाई होंगे। एक गोरा और एक साँवला होगा, दोनों के हाथ में धनुष और बाण होगा। जिसे देखकर नेत्रों से जल और प्यार ऊमड़ जाये, तो समझ लेना वही राघव हैं।

तभी से माता शबरी गुरु के वचनों पर दृढ़ विश्वास कर सारे संसार को भूल गई। बस गुरु के कहे अनुसार साँवले रूप राम का चिन्तन करतीं, धनुष बाण का चिन्तन करतीं और झाड़ू लगातीं। समय बीतता गया। एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। वे अब वृद्ध हो गईं। लेकिन माता शबरी का धैर्य नहीं गया। गुरु की बातों पर दृढ़ विश्वास। मन्त्रमूलं गुरुवाक्यं अर्थात गुरु के वाक्य मन्त्र जैसे हैं। जब गुरु ने कहा है, तो राम आएँगे अवश्य।

जब रामजी आये, तब कई तपस्वी साधुओं ने रामजी से कहा – प्रभु, आप हमारी कुटिया में चरण रखें। पर प्रभु रामजी ने कहा – ''पहले मेरी शबरी माता का घर बता दो, पहले मैं उनकी कुटिया में जाऊँगा''। इस तरह श्रीरामजी माता शबरी से मिलने उनकी कुटिया में गये और उनके मीठे बेर भी खाये। इससे बड़े-बड़े तपस्वियों का अहंकार नष्ट हो गया। भगवान तपस्वी के घर नहीं, पहले प्रेमियों के घर जाया करते हैं।

माता शबरी राम को नहीं जानती थीं, पर गुरु को जानती थीं। गुरु की आज्ञापालन की, तो गुरु ने उन्हें भगवान राम तक पहुँचा दिया। यही गुरु का काम है।

बच्चो, आज हम देखते हैं कि विद्यालय में बच्चे अपने शिक्षक और शिक्षिकाओं के साथ बहुत ही अशिष्ट व्यवहार करते हैं। उनके लिए अभद्र शब्दों का उपयोग करते हैं, उनकी बातों को महत्त्व नहीं देते। इसीलिए गुरु भी केवल पढ़ाकर अपना कर्तव्य पूर्ण कर देते हैं। गुरु-शिष्य के बीच जो भावनात्मक, श्रद्धात्मक संबंध हमारी भारतीय संस्कृति में था, वह कम होता जा रहा है।

तो बच्चो, आप आज यह प्रण लें कि हम अपने गुरु का सम्मान करेंगे और उनका प्रियपात्र बनकर जीवन में सफल होकर सम्मानित होंगे। ○○○

रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि

स्वामी पररूपानन्द, जयरामवाटी

(गतांक से आगे)

वराहनगर मठ का जीवन अत्यन्त कठिन था। 'भिक्षा न माँगकर अयाचित रूप से जो कुछ मिले, वही ग्रहण करने का सिद्धान्त' अपनाये ये युवा-संन्यासी जिस दिन कुछ भी खाने के लिए नहीं होता, उस समय शास्त्र-चर्चा, ध्यान और भजन गाने में इतना तल्लीन हो जाते कि मानो देहबोध खो बैठे हों। एक दूसरे को देखकर प्रेरणा पाकर और अधिक जप-ध्यान करने में मन लगाते थे। वस्त्र में कौपीन और कुछ गेरुआ कपड़े थे; मठ के बाहर जाते समय पहनने के लिए एकमात्र सिला हुआ गेरुआ वस्त्र और चादर था। कभी-कभी ये युवा साधक दिन भर दक्षिणेश्वर में ध्यान करते अथवा रात भर काशीपुर श्मशान घाट पर जागरण, प्रार्थना आदि करते। यदि कोई गुरुभाई इस तरह साधना से उपलब्धि न होने के कारण असंतोष व्यक्त करता, तो नरेन्द्रनाथ कहते ईश्वर दर्शन नहीं हुआ, तो इसका अर्थ यह नहीं कि हम सांसारिक जीवन को अपना लें। वे वार्तालाप कर उसका मनोबल बढ़ाते। सारदाप्रसन्न ने परिव्रज्या का प्रयास किया, परन्तु कुछ दिन पश्चात् लौट आये। शशी ठाकुर की नित्य पूजा में साधना की सार्थकता अनुभव करते रहे और इस प्रकार वे मठ के लिए खूँटी जैसे थे। पूजागृह में उन्होंने ठाकुर की व्यवहृत वस्तुओं को रखकर नित्य पूजा आरम्भ कर दी थी। लाटू महाराज ने कहा था, 'कुछ दिन पश्चात् कालीभाई ने पूजा के मन्त्र सब तैयार कर लिये थे, तब से उन मन्त्रों को पढ़कर पूजा करना आरम्भ हुआ।' ठाकुर के पवित्र अस्थि-भस्म के ताम्र-पात्र को ठाकुर के बिस्तर पर रख उस पर ही पूजा होती थी। इसी ताम्र-पात्र का ही नाम हुआ – 'आत्माराम का पात्र', संक्षेप में 'श्रीजी'। जब पूजा के नैवेद्य के लिए कुछ भी न होता, तो शशी भिक्षा माँगने निकल जाते। जो कुछ प्राप्त होता, उसे पकाकर ठाकुर को अर्पण कर प्रसाद के रूप में एक-एक कौर साधनरत गुरुभाइयों के मुख में डाल देते। उनके द्वारा ठाकुर की पूजा करते समय अपने इष्ट के प्रति मनोभावना और उसे कार्यान्वित करना, केवल रामकृष्ण संघ के अनुयायियों को ही नहीं वरन् सभी भगवद्भ-भक्तों के लिए सीखने योग्य है। वराहनगर मठ में 'आत्माराम के पात्र' को ठाकुर की सजीव उपस्थिति मानकर शशी पूजा करते थे। उन्हें पूजा करते देखकर गुरुभाइयों एवं भक्तों के मन भी उसी भाव से भावित हो जाते थे। काली अपना समय स्वाध्याय, जप-ध्यान में व्यतीत करते, यहाँ तक कि नरेन्द्रनाथ के बोलने पर भी आसन त्याग नहीं करते थे। सो नरेन्द्रनाथ ने उनका नाम ही रख दिया था – 'काली तपस्वी'। बाबूराम और शरत् कभी-कभी अन्य स्थानों पर

जाकर साधना करते और तारक मधुर स्वर से भजन गाकर साधना में मनोनिवेश करते थे। परवर्ती काल में वराहनगर मठ के जीवन के बारे में पूछने पर स्वामीजी ने कहा था – 'उन दिनों हमलोग कल की नहीं सोचते थे। कभी खाने को कुछ भी न होता और कभी भात होता, तो नमक नहीं रहता। महीनों कच्चू के पत्ते उबालकर, नमक और भात खाया था। क्रमागत ध्यान एवं अन्य साधना में डूबे रहकर समय व्यतीत होता था। उस समय की तितिक्षा और तपस्या देखकर तो भूत भी भाग जाते, मनुष्यों की तो बात ही क्या !' वे दिन अत्यन्त ही श्रमसाध्य थे – ध्यान, स्वाध्याय, स्तव-पाठ, शास्त्रचर्चा, संगीत व नृत्य क्रमागत दिनभर चलता रहता था। आसपास के लोगों की आपत्ति की उपेक्षा कर दिनचर्या यथावत् चलती रहती थी। पाश्चात्य दार्शनिक कान्ट, हेगेल, मिल और स्पेन्सर के विचारों का अध्ययन और उनका विवेचन दृढ़ता से किया जाता था। षड्-दर्शन के साथ बौद्ध साहित्य एवं बाइबल का भी अध्ययन गहराई से किया जाता था। यहाँ तक कि अनीश्वरवाद की उपेक्षा नहीं की जाती थी और न ही समाजशास्त्र, साहित्य, कला और विज्ञान की। विद्वान लोग आकर वाद-विवाद करते और अभिभावकगण घर लौटाने का प्रयास करते, परन्तु आध्यात्मिकता का प्रचण्ड वेग नहीं रुकता था। इसके अतिरिक्त आसपास के लोगों के द्वारा की जानेवाली आलोचना, व्यंग्य आदि को भी सहना पड़ता था।। इन कठिनाइयों में बलरामबाबू और मास्टर महाशय द्वारा भी बीच-बीच में आर्थिक सहयोग मिलता रहता था। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन ही कुछ गुरुभाई भिक्षा करने जाते थे तथा चावल आदि जो कुछ प्राप्त होता, उसे पकाकर क्षुधा निवृत्ति होती। किसी दिन सब्जी न रहने पर एक प्रकार की पत्ती उबाल कर भात के साथ खाया करते थे। एक दिन चार गुरुभाइयों को भिक्षा में कुछ भी न मिला, तो लौटकर भजन करने में लीन हो गये। शशी ठाकुर के भोग हेतु एक पड़ोसी से भिक्षा माँगने निकल पड़े। उस घर के मात्र एक सदस्य में ही मठ के प्रति सद्भावना थी। अत: उनसे थोड़ा चावल, आलू और घी मिला। उस अल्प मात्रा में मिले भिक्षान्न को पकाकर ठाकुर को निवेदन किया एवं तत्पश्चात् छोटे-छोटे गोले बनाकर प्रत्येक गुरुभाई के मुख में एक-एक कौर प्रसाद डाल दिया। भिक्षा माँगने पर आसपास के लोगों की अप्रिय प्रतिक्रिया व वार्तालाप को शान्त रहकर सहन करते थे। पहनने के वस्त्र के रूप में मात्र एक गेरुआ वस्त्र था, जिसे भिक्षा माँगने के लिए कोई बाहर निकलने पर पहनकर जाता था, अन्यथा मठ में पहनावे के लिए प्रत्येक के पास केवल कौपीन होती थी। गंगा में नहाने के बाद शरीर पोंछने के लिए गमछा नहीं था। शयन के लिए दो-तीन चटाई और दरी थी तथा चटाई के नीचे ईंट रखकर तकिये की तरह व्यवहार की जाती थी। अवश्य ही समयोपरान्त कुछ और चटाई और प्रत्येक के लिए तकिये की व्यवस्था हो गई। १८९० ई. में सुरेश मित्र और बलरामबाबू के निधन के पश्चात् मठ की आर्थिक स्थिति अत्यन्त बिगड़ जाने पर रसोईये को रखना सम्भव न हो सका। उन दिनों सभी मिलकर पास के तालाब से जल लाकर शौच करने के स्थान की सफाई, बर्तनों को धोना, पूजा-गृह तथा मठ के कमरों को साफ करने का कार्य सभी गुरुभाई मिलकर करते थे। इन नित्य कर्मों के साथ जप-ध्यान में निमग्न रहना ही प्रधान कर्म था।

स्वामी योगानन्द मात्र कुछ महीने मठ में थे। आरम्भ में वे रात-दिन जप-ध्यान करते थे। ध्यान इतना गहरा होता था कि आँखें लाल रहती थीं। स्वामी अभेदानन्द ध्यान, जप, शास्त्र-अध्ययन निसंग होकर करते थे। ये मठ में लगभग एक वर्ष दस माह थे। स्वामी ब्रह्मानन्द लगातार दो वर्ष दस माह मठ में थे। महाराज एकदम निश्चल होकर जप करते थे, समय का बोध ही न रहता था। स्वामी अद्भुतानन्द लगातार एक वर्ष छ: माह मठ में रहकर तपस्यारत थे। रात में अल्प अवधि की निद्रा के पश्चात् सम्पूर्ण रात्रि जप करते रहते थे। यहाँ तक कि बिना कुछ खाये जब भी समय मिलता वे जप करते रहते थे। मठ से निकलकर गंगा-तीर पर भी उनकी साधना चलती रहती थी। स्वामी त्रिगुणातीतानन्द चार वर्ष से अधिक मठ में तपस्यारत थे। मठ के दैनिक कार्यों के बाद शास्त्रपाठ के साथ-साथ जप-ध्यान में इस प्रकार डूबे रहते थे कि गुरुभाइयों को उन्हें दो कौर भोजन ग्रहण कराने में काफी प्रयास करना पड़ता था। स्वामी सारदानन्द के एक पत्र से अनुमान किया जा सकता है कि मठ के साधकों का उद्देश्य न केवल ईश्वर-दर्शन था, बल्कि स्वयं को ईश्वरकोटि की श्रेणी में भी पहुँचाना था। मठ आरम्भ करने के सात दिन पश्चात् काली-पूजा की गई थी १८८७ ई. में फरवरी में शिवरात्रि के चारों प्रहरों की पूजा तथा मई में नरेन्द्रनाथ की इच्छानुसार काली पूजा की गई थी, जिसकी व्यवस्था सुरेन्द्र बाबू ने सहर्ष किया था। प्रत्येक वर्ष ठाकुर की जन्मतिथि के

अवसर पर दिन में दशावतारों की पूजा तथा रात्रि में दश महाविद्या की पूजा करके भोर होने पर हवन कर विशेष-पूजा की समाप्ति होती थी। परवर्ती रविवार को दक्षिणेश्वर मन्दिर परिसर में इस उपलक्ष्य में उत्सव मनाया जाता था। इसे 'सार्वजनिक महोत्सव' कहा गया, इसकी व्यवस्था भक्त हरमोहन मित्र करते थे। लाटू महाराज की स्मृतिकथा से ज्ञात होता है कि एक बार ठाकुर की तिथि-पूजा के अवसर पर नरेन्द्रनाथ ने पूजा की थी। दुर्गापूजा घट और चित्र रखकर किया जाता था, ऐसा भी सुना जाता है। कुछ वर्ष स्वामी तुरीयानन्द दुर्गा-सप्तशती का नौ दिन पाठ करते थे। इनके अतिरिक्त होली, रथयात्रा का उत्सव भी मनाया जाता था। इन उत्सवों में भक्तों की संख्या क्रमशः बढ़ी थी और मिलकर भजन-कीर्तन आदि गाते थे। आँटपुर में क्रिसमस की पूर्व रात्रि में ईसा मसीह का स्मरणकर हुई घटना के उपलक्ष्य में वराहनगर मठ में प्रतिवर्ष श्रद्धापूर्वक ईसा मसीह के आविर्भाव का अनुष्ठान स्वामी त्रिगुणातीतानन्द उत्साहपूर्वक करते थे। जीवन में शास्त्रचर्चा पर भी युवा तपस्वीगण विशेष ध्यान देते थे। विशेष रूप से कालीप्रसाद (स्वामी अभेदानन्द) प्रतिदिन स्वाध्याय पर अधिक समय देते थे। इस पर जब गुरुभाई आपस में उनकी शिकायत करने लगे कि वे मठ के कार्यों में योगदान नहीं करते हैं, तो नरेन्द्रनाथ ने कालीप्रसाद का समर्थन करते हुए कहा कि उनके कार्य को नरेन्द्र स्वयं कर देने को प्रस्तुत हैं, परन्तु कालीप्रसाद को शास्त्राध्ययन करने दिया जाये। कालीप्रसाद के अतिरिक्त नरेन्द्रनाथ, शरत्, शशी, तारक तथा सारदाप्रसन्न भी गहन अध्ययन करने में डूबे रहते थे। नरेन्द्रनाथ और कालीप्रसाद के बीच शास्त्रार्थ पर चर्चा करना अन्य गुरुभाइयों को प्रिय था, जिसमें नरेन्द्रनाथ की ही विजय होती थी। धीरे-धीरे मठ में स्थानीय विद्वान भी आकर शास्त्रार्थ करने में भाग लेने लगे थे। यहाँ तक कि रात-दिन शास्त्रचर्चा चलती थी, परन्तु नरेन्द्रनाथ को न तो थकावट होती और न ही उदासीनता। ताक एवं चौकी पर रखी उस समय की पुस्तकों में पैंतीस पुस्तकें बेलूड़ मठ के संग्रहालय में रखी हैं। भजन-कीर्तन में युवा तपस्वीगण भाव-विभोर होकर गाते हुए नृत्य करते थे, जिसे सुनकर आसपास के लोग दंग रह जाते थे, क्योंकि ऐसा भक्तिभाव से परिपूर्ण भजन नृत्य कभी उनलोगों ने सुना नहीं था। ठाकुर के गृहस्थ-भक्तों में श्रीरामकृष्ण-वचनामृतकार मास्टर महाशय, सुरेशचन्द्र मित्र, गिरीशचन्द्र घोष, चुन्नीलाल वसु और भवनाथ चटर्जी प्रायः ही आते थे। महिला भक्तों में केवल गोलाप माँ, गौरी माँ और गोपाल की माँ को मठ में आने की अनुमति थी। गोपाल की माँ के आने पर संन्यासी शिष्यगण उनसे ठाकुर को भोग निवेदन करने का अनुरोध करते थे, जिसे वे सहर्ष करती थीं। एक-दो सब्जी भी बनाकर ठाकुर को परोसती थीं। धर्मप्रसंग सुनने के लिए धर्मानुरागी व्यक्ति मठ में आकर विद्वान युवा साधकों से शास्त्र-चर्चा सुनकर तृप्त होते थे, विशेष रूप से स्वामीजी, स्वामी अभेदानन्द और स्वामी तुरीयानन्द का प्रवचन सुनकर। इतना ही नहीं, युवा साधकों ने रोगों से पीड़ित व्यक्तियों की सेवा करना भी आरम्भ कर दिया था। स्वयं भूखे रहकर भी क्षुधार्थ व्यक्ति को भोजन कराते थे। ठाकुर के संन्यासी एवं गृहस्थ भक्तगण आपस में एक परिवार के सदस्य के रूप में सम्बन्ध रखते थे और जिस किसी प्रकार की आवश्यकता हो आपस में तत्काल सहयोग करना आरम्भ कर देते थे। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मठ के संन्यासियों की एकता का रहस्य था – आपस में अगाध विश्वास और प्रेम। स्वामी सारदानन्द ने १९२६ ई. के साधु-सम्मेलन के भाषण में कहा था – ठाकुर के संन्यासी-शिष्यों की एकता का रहस्य था, त्याग की तीव्र भावना और अपने इष्ट के प्रति प्रेम। स्वामी प्रेमानन्द कहते थे – रामकृष्ण संघ का पर्यायवाची शब्द है 'प्रेम'। श्रीमाँ ने कहा था – प्रेम में ही विकसित हुआ था उनका (ठाकुर का) संघ। यह प्रेम ही है संघ की प्राणशक्ति। स्वामीजी ने कहा था कि यदि मुझमें किसी प्रकार का दोष आ जाये, तो मेरे शिष्य मुझको त्याग देंगे, परन्तु गुरुभाइयों के लिये मैं वही नरेन्द्र रहूँगा। जब ऐसा प्रेम दीख पड़े, तभी एक नया धर्म जन्म लेता है।[१५]

मठ के दैनन्दिन जीवन का वर्णन 'वचनामृत' के अन्तिम कुछ पृष्ठों में मिलता है। यहाँ आर्थिक कठिनाइयों के बीच उत्सव मनाने में मठ के सभी सदस्यों के मन में पूर्ण उत्साह होता था। २१ फरवरी, १८८७ ई. शिवरात्रि के दिन वचनामृतकार मास्टर महाशय मठ आकर देखते हैं कि तारक और राखाल नरेन्द्रनाथ द्वारा भगवान शिव पर लिखे भजन 'ताथैया ताथैया नाचे भोला' गाते हुए नृत्य कर रहे हैं, बीच-बीच में 'शिव गुरु ! शिव गुरु !' उच्चरित गम्भीर ध्वनि गगन में लीन हो रही है। तत्पश्चात् शरत् ने भजन गाया। रात्रि हो जाने पर सभी युवा संन्यासी बिल्व-वृक्ष के नीचे चारों प्रहर की पूजा करने एकत्र हुए। कालीप्रसाद

ने भगवद्गीता पढ़ी और नरेन्द्रनाथ के साथ सृष्टि के स्रष्टा के बारे में चर्चा की। इसके बाद सभी भजन आदि गाते हुए बिल्व-वृक्ष के चारों ओर घूमने लगे। भोर होने पर सभी ने गंगा-स्नान किया और मठ में ठाकुर के चित्र के सामने साष्टांग प्रणाम किया। अन्त में दानवों के कमरे में एकत्र होकर भक्त बलराम बाबू द्वारा भेजे गये फल एवं मिठाई खाया। श्रीम अन्य एक दिन का दृश्य लिखते हैं – सन्ध्या होने पर शशी ने श्रीरामकृष्ण के चित्रों को धूप दिखाया और आरती करने लगे। झाँझ व घण्टे बज रहे हैं। मठ के गुरुभाई तथा भक्तवृन्द खड़े होकर एक स्वर से आरती गा रहे हैं। जय शिव ओंकार, भज शिव ओंकार। ब्रह्मा विष्णु सदाशिव, हर हर हर महादेव। (यह गायन काशी में विश्वेश्वर-मन्दिर में हुआ करता है)

गृहीभक्त प्राय: रविवार मठ में आते थे। श्रीम कभी-कभी चार-पाँच दिन मठ में ही रुक जाते थे। मठ के त्यागी युवा संन्यासीगण स्वयं को भूत तथा दानव कहते थे, क्योंकि भूत, दानव आदि भगवान शिव के अनुयायी हैं। जिस कमरे में एक साथ बैठते थे, उसे 'दानवों का कमरा' कहते थे। इसी कमरे में भक्तों के आने पर उनका स्वागत एवं वार्तालाप किया जाता था। इस कमरे के उत्तर में छोटा कमरा 'पान' में भक्तगण भोजन करते थे। दानवों के कमरे के पूर्व में दालान उत्सव के समय भोजन करने के काम आता था और उत्तर की ओर रसोईघर था। दानवों के कमरे में बैठकर नरेन्द्र दैवी कण्ठ से भगवान के नामों और गुणों का कीर्तन करते थे, आनन्दपूर्वक नृत्य करते थे। शरत् गुरुभाइयों को गाना सिखाते थे। कालीप्रसाद वाद्य सीखते थे।[१६]

नरेन्द्रनाथ एवं गुरुभाइयों द्वारा संन्यास लेने का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। ठाकुर द्वारा दिये गये गेरुआ वस्त्रों को इन युवा संन्यासियों ने आँटपुर से वराहनगर मठ लौटकर पहनना आरम्भ किया था, यद्यपि उन दिनों नियमित नहीं पहनते थे। सम्भवत: मठ में वास करते समय किसी समय हवन करने की अग्नि प्रज्वलित कर उसमें वैदिक मन्त्रों से आहुति देकर संन्यास ग्रहण किया था। स्वामी अभेदानन्दजी की आत्मकथा से विदित होता है कि जब उनसे संन्यास लेने की विधि के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने इन मन्त्रों का संग्रह किया है, ऐसा कहा। उन मन्त्रों की सहायता से १८८७ ई. के जनवरी माह के तीसरे सप्ताह एक दिन ठाकुर की पादुकाओं के सम्मुख हवन कर नरेन्द्रनाथ ने प्रथम आहुति दी, तत्पश्चात् निरंजन, शशी, शरत, राखाल, सारदाप्रसन्न, बाबूराम और काली ने आहुति दी। स्वामी अभेदानन्द के शिष्य स्वामी शंकरानन्द द्वारा लिखित अभेदानन्दजी (काली) की जीवनी से ज्ञात होता है कि ठाकुर के काशीपुर में चिकित्सारत रहते समय श्रीविजय कृष्णगोस्वामी से गया के निकट बराबार पर्वत पर एक हठयोगी के बारे में सुनकर काली वहाँ गये। उन्होंने उस पर्वत के नीचे दशनामी पुरी सम्प्रदाय के एक संन्यासी से विरजा होम के मन्त्र लिख लिया था। संयोग से ठाकुर को संन्यास में दीक्षित करनेवाले तोतापुरीजी भी इसी सम्प्रदाय के थे। इस घटना के विषय में किसी प्रकार के तथ्य उपलब्ध न होने के कारण विस्तृत विवरण देना सम्भव नहीं है। ८ जनवरी, १८९० ई. को स्वामी शिवानन्द द्वारा हिमालय में भ्रमण कर रहे गंगाधर को लिखे पत्र में निम्नलिखित नाम इस प्रकार हैं –

निरंजन – स्वामी निरंजनानन्द
योगीन – स्वामी योगानन्द
बाबूराम – स्वामी प्रेमानन्द
लाटू – स्वामी अद्भुतानन्द
शशी – स्वामी रामकृष्णानन्द
तारक – स्वामी शिवानन्द (पत्र के लेखक)
हरि – स्वामी तुरीयानन्द
तुलसी – स्वामी निर्मलानन्द
दक्ष – स्वामी ज्ञानानन्द
काली – स्वामी अभेदानन्द
गोपालदादा – स्वामी अद्वैतानन्द

जैसा कि जाना जाता है नरेन्द्र ने पहले विविदिशानन्द और पश्चात् सच्चिदानन्द एवं अन्तत: विवेकानन्द नाम रखा

था। ऐसा उन्होंने अकेले भारत-भ्रमण करते समय गुरुभाइयों से अपना परिचय गुप्त रखने के उद्देश्य से किया था। उपरोक्त पत्र में नहीं लिखे नाम इस प्रकार हैं –

राखाल – स्वामी ब्रह्मानन्द

शरत् – स्वामी सारदानन्द

सारदाप्रसन्न – स्वामी त्रिगुणातीतानन्द

सुबोध – स्वामी सुबोधानन्द

स्वामी शिवानन्द के लिखे नामों में स्वामी ज्ञानानन्द (दक्ष) का नाम यह दर्शाता है कि ऐसे नवीन संन्यासियों का आगमन होना आरम्भ हो गया था, जिन्होंने श्रीरामकृष्ण के दर्शन नहीं किये थे। १८८८ ई. में स्वामी विवेकानन्द से हाथरस (उत्तरप्रदेश) के रेलवे स्टेशन पर स्टेशन मास्टर शरतचन्द्र गुप्त मिले और वहीं उन्होंने संन्यासी बनने का निर्णय लिया और स्वामी सदानन्द नाम से परिचित हुए। १८९१-९२ ई. में कुछ युवा वराहनगर मठ आने लगे और शीघ्र ही स्वामी रामकृष्णानन्द से आकर्षित हुए। ठाकुर के संन्यासी शिष्यों के उपरान्त होनेवाले ये नवीन संन्यासी शिक्षित एवं बड़े सुसंस्कृत स्वभाव के थे। ये हैं –

सुधीरचन्द्र चक्रवर्ती – स्वामी शुद्धानन्द

कालीकृष्ण वसु – स्वामी विरजानन्द

खगेन्द्रनाथ चटर्जी - स्वामी विमलानन्द

गोविन्द चन्द्र सुकुल - स्वामी आत्मानन्द

हरिपद चटर्जी - स्वामी बोधानन्द

सुशील चन्द्र चक्रवर्ती - स्वामी प्रकाशानन्द

इनमें से शुद्धानन्द को स्वामी निरंजनानन्द ने और शेष युवाओं को स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य से कलकत्ता आने पर संन्यास में दीक्षित किया था। ठाकुर के त्यागी शिष्य गंगाधर का हिमालय तथा तिब्बत भ्रमण कर लौटने पर वराहनगर मठ में १८९० ई. में एवं एकमात्र हरिप्रसन्न का संन्यास बेलूड़ मठ में हुआ था, इनके नाम हैं – स्वामी अखण्डानन्द और स्वामी विज्ञानानन्द। इस प्रकार बंगाल में संन्यास की प्राचीन भारतीय धार्मिक परम्परा का धारक वराहनगर मठ बना।[१७]

वराहनगर मठ की जीवनधारा का उपरोक्त वर्णन के साथ पाठक स्मरण करें, वृन्दावन में श्रीमाँ ने उनके सेवक योगीन को ठाकुर से प्राप्त निर्देशानुसार मन्त्रदीक्षा दी। कहना होगा कि इस प्रकार श्रीरामकृष्ण-लीला में श्रीमाँ अपनी भावी भूमिका की ओर संकेत दे रही हों। हम श्रीमाँ की जीवनी के अनुध्यान से समझ सकते हैं कि किस प्रकार ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् श्रीमाँ ने दीर्घ चौंतीस वर्ष संघ को अपने अलौकिक स्नेह से सींचकर शक्ति प्रदान की। इसके अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं में उनके श्रीमुख से निःसृत वाक्यों का पालन करना संघ के लिए कितना लाभप्रद सिद्ध हुआ, यह अब भक्तों को विदित है। सन् १८९० ई. के मार्च के अन्त में श्रीमाँ बोधगया गई थीं। वहाँ के एक मठ का ऐश्वर्य देखकर और ठाकुर के त्यागी शिष्यों की अत्यन्त कष्टदायक परिस्थिति स्मरण करके संघ-जननी के मन के दुःख की सीमा न थी। वे ठाकुर के सामने कितना रोई थीं। उन्होंने व्याकुल होकर ठाकुर से प्रार्थना की थी, ''ठाकुर, तुम आये, इन कुछ व्यक्तियों के साथ लीला की और आनन्द करके चले गये और बस, सब समाप्त हो गया? तो इतना कष्ट करके आने की आवश्यकता भला क्या थी? मैंने काशी-वृन्दावन में देखा है, अनेक साधु भीख माँगते और इधर-उधर भटकते-रहते हैं। ऐसे साधुओं की तो कमी नहीं है। तुम्हारे नाम पर अपना सब कुछ त्यागकर मेरे बच्चे थोड़े से अन्न के लिए भटकते रहेंगे, यह मुझसे देखा नहीं जाएगा। मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम्हारे नाम पर जो निकलेंगे, उन्हें साधारण खाने-पहनने का अभाव न हो। वे सभी तुम्हें और तुम्हारे उपदेशों तथा भावों को लेकर एक साथ रहेंगे और सांसारिक दुखों से जर्जरित मनुष्य उनके पास आकर तुम्हारी बातें सुनकर शान्ति पायेंगे। इसीलिए तो तुम्हारा यहाँ आना हुआ है। उन्हें इधर-उधर भटकते देख मेरा हृदय व्याकुल हो उठता है।'' माँ की इस प्रार्थना के साथ-साथ इस महान संघ के सर्जन व पालन में ठाकुर की कृपा और स्वामीजी का अकल्पनीय परिश्रम का स्मरण-मनन सर्वदा भक्तों को अपने इष्ट से 'संतान का माता-पिता के साथ सम्बन्ध' से जोड़कर रखेगा।' ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् लगभग पाँच वर्ष से कुछ अधिक समय में वराहनगर मठ में रामकृष्ण-संघ रूपी वट वृक्ष अंकुरित एवं विकसित होने लगा था। इसके विकास में श्रीरामकृष्ण के त्यागी एवं गृहस्थ भक्तों का अथक परिश्रम और सभी प्रकार का योगदान सहज ही विदित होता है। स्वामीजी के अनुसार हमारे केन्द्र ठाकुर ही हैं। हम सभी इस ज्योति-केन्द्र की एक-एक किरण हैं। इन वीर्यवान तपस्वियों की प्रचेष्टा से वराहनगर मठ आध्यात्मिक शक्ति का आधार बना। सबकी

दृष्टि से अगोचर था श्रीमाँ की व्याकुल होकर की गई प्रार्थना, अलौकिक प्रेम एवं आशीर्वाद। इसीलिए श्रीमाँ को श्रद्धा से संघजननी कहा जाता है। मनुष्य सहज ही में नवीन को ग्रहण करने में अनिच्छुक होता है। आरम्भ में वराहनगर मठ के युवा संन्यासियों को भी साधारण लोगों द्वारा किये गए हास-परिहास, अवज्ञा तथा तिरस्कार को मौन रहकर सहना पड़ा था। क्रमश: बाधाएँ क्षीण होती गईं और संघ उत्तरोतर शक्तिशाली होता गया। श्रीरामकृष्ण देव की कृपा प्राप्त और उनके द्वारा प्रशिक्षित प्रत्येक युवा-संन्यासियों की तपस्या से प्रदीप्त आध्यात्मिक शक्ति के पूँजीभूत केन्द्र वराहनगर मठ ने सनातन धर्म के नवोन्मेष का शंखनाद किया था।[१८]

१८९० ई. के मध्य में जब नरेन्द्रनाथ भारत-भ्रमण के लिए मठ से निकलकर १८९७ ई. के आरम्भ में विश्वविजय यात्रा कर कलकत्ता लौटे, तब तक मठ आलमबाजार स्थित मकान में पाँच वर्ष व्यतीत कर चुका था। स्वामीजी अपने परिव्राजक के रूप में भारत-भ्रमण (१८९० ई.-१८९३ ई. मध्य तक) करते समय ही सनातन-धर्म एवं राष्ट्र के पुनरुत्थान के विषय में सर्वदा चिन्तन-मनन करते रहते थे। देश में हों या विदेश में, स्वामीजी समय-समय पर वार्तालाप और पत्रों के माध्यम से अपने विचार गुरुभाइयों, शिष्यों एवं अनुयायियों को अवगत कराते रहते थे। परन्तु उनकी चिन्ता क्रमश: सबके मिलित प्रयास को सुव्यवस्थित ढंग से कार्य करने में लगाने के लिए रहती थी। आलासिंगा पेरुमल को अमेरिका से लिखे पत्रों से स्पष्ट हो जाता है कि स्वामीजी संघबद्ध व व्यवस्थित होकर कार्य करने की ओर बल दे रहे हैं। यद्यपि ब्रह्मवादिन् पत्रिका के सम्बन्ध में लिखते समय उन्होंने इस ओर ध्यान देने के लिए ये विचार व्यक्त किये थे। वस्तुत: हम जानते हैं कि संघबद्ध होकर कार्य करने की पद्धति किसी भी क्षेत्र में सफलता के लिए अत्यावश्यक होती है। गुरुभाइयों के ऊपर गृहस्थ-जीवन के दायित्व का भार नहीं था, परन्तु उस समय वे लोग श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव के तात्पर्य को पूर्णरूपेण नहीं समझ पाये थे। ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् उनके द्वारा आध्यात्मिक साधना के विषय में बताये गये नियमों का अक्षरश: पालन कर चरम लक्ष्य की प्राप्ति करने तक ही गुरुभाइयों का प्रयास सीमित था। स्वामीजी की मुख्य योजना में इस महान लीला को आगे बढ़ाने में संन्यासियों को समाज का नेतृत्व करने का दायित्व लेना था। संघबद्ध होकर कार्य करने में कर्ममय जीवन की मूलभूत आवश्यकता होती है। अत: वर्तमान समय में संन्यासी के लिए स्वाभाविक रूप से अगला प्रश्न आया कि साधना की पारम्परिक पद्धति के साथ कर्म को भी साधना का अंग माने या नहीं और मानने पर इन दोनों का सामंजस्य कैसे करें। अतीत से चली आ रही कर्म और पूजा के सिद्धान्त से हटकर स्वामीजी ने 'कर्म ही पूजा' को इस नवजागरण का मूलमन्त्र बनाया और इसे कार्यान्वित करने के लिए श्रीरामकृष्ण की जीवन एवं वाणी के आधार पर गुरुभाइयों को आवश्यक निर्देश देना आरम्भ किया। स्वामीजी वन के वेदान्त को जन-साधारण में प्रचलित करने की तीव्र आकांक्षा रखते थे। उस समय की परिस्थितियों में अवश्य ही यह अत्यन्त कठिन कार्य था। एक और प्रश्न का उत्तर भारतीय समाज में उठ रहा था। क्या यह एक नवीन सम्प्रदाय आरम्भ करने का प्रयास है, क्या धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराओं में परिवर्तन होगा इत्यादि? एक और अति महत्त्वपूर्ण प्रश्न था कि क्या श्रीरामकृष्ण की इष्ट के रूप में पूजा प्रारम्भ की जाये? आलासिंगा पेरुमल को ६ मार्च, १८९५ ई. को लिखे पत्र में स्वामीजी ने उन्हें श्रीरामकृष्ण के केवल उपदेशों का प्रचार करने को कहा। स्वामीजी के अनुसार विचार ग्रहण करने के पश्चात् लोग, अपनेआप जिनके ये विचार हैं, उन्हें मानने लगेंगे। इसे स्वामीजी ने अपने इष्ट श्रीरामकृष्ण के प्रति श्रद्धा-भक्ति की भावना को संयमित कर कहा होगा, क्योंकि वे जानते थे कि ठाकुर मात्र कुछ सिद्धान्तों के प्रतिपादक नहीं थे। साथ ही वे निश्चित रूप से विश्वास रखते थे कि ठाकुर निकट भविष्य में पूजित होंगे ही। ठाकुर की पूजा के बारे में स्वामीजी ने हरिदास बिहारीदास देसाई को जनवरी, १८९४ ई. में पत्र लिखा था। यदि ईसा मसीह, कृष्ण और बुद्ध की पूजा करने में कोई हानि नहीं है, तो इस मनुष्य को पूजने में क्या हानि हो सकती है, जिसके विचार या कर्म में अपवित्रता कभी छू तक नहीं गयी ...। स्वामीजी आगे लिखते हैं कि वे स्वयं और उनके गुरुभाई किसी से गुरु-पूजा करने को प्रमुखता देने के लिये नहीं कहते हैं, इसी तरह दूसरे को कोई अधिकार नहीं है कि वह किसी को इस प्रकार पूजा करने से रोके।[१९]

आलमबाजार मठ – लगभग पाँच वर्ष से अधिक समय वराहनगर में रहने के पश्चात् इस समय की मुख्य घटनाओं में मठ का फरवरी, १८९२ में आलमबाजार में स्थानान्तरित होना है। यहाँ का निवासकाल १३ फरवरी,

१८९८ ई. तक था अर्थात् लगभग छः वर्ष। यहाँ पर ही मठ के जीवन-प्रवाह की दिशा स्थाई रूप से परिवर्तित हुई थी। यह स्थान वराहनगर और दक्षिणेश्वर के मध्य में है। भवन के प्रथम तल पर सत्संग के लिए बड़ा कमरा था, जो रात्रि में शयन-कक्ष के रूप में उपयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त रसोईघर भी थी। ऊपरवाले तल पर पूजागृह था तथा अन्य तीन कमरे मठ के सदस्यों के शयनकक्ष थे। सामने आंगन और मकान की छत भी बड़ी थी। जनसाधारण में इस मकान के भुतहा होने की अफवाह के कारण मात्र दस रुपये प्रति माह किराये पर मिल गया था। वराहनगर मठ से ठाकुर की पूत अस्थि (अस्थिभस्म-कलश), पादुका, पूजाघर की सामग्री, पुस्तकें, कपड़े, बर्तन आदि लेकर संन्यासीवृन्द यहाँ आये थे। संलग्न भूमि पर कुँआ, तालाब और फलों का बगीचा था। इस द्वितीय मठ में प्रथम दो वर्ष वराहनगर मठ की भाँति युवा तपस्वियों का जीवन संन्यास-जीवन के पारम्परिक रीति अनुसार ही चलता रहा – प्रव्रज्या, शास्त्रचर्चा, तपस्या आदि। यहाँ अप्रैल, १८९४ ई. में स्वामीजी का पत्र पाने से आरम्भ करके एवं तत्पश्चात् प्राप्त पत्रों में स्वामीजी के निर्देशों को पढ़कर गुरुभाइयों एवं अन्तरंग गृहस्थ-भक्तों के मन में उठे प्रश्नों के उत्तर की अपेक्षा में वे सभी स्वामीजी की प्रतीक्षा करने लगे होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। क्योंकि स्वामीजी पाश्चात्य में प्रधानतः वेदान्त का प्रचार कर रहे थे, परन्तु भारत में भेजे गये पत्रों में श्रीरामकृष्ण देव के अवतारत्व को अधिक महत्त्व दे रहे थे। साथ ही श्रीमाँ सारदा के प्रति भाव-भक्तिमय उद्‌गारों को पाकर भी यहाँ सभी विस्मित थे। इसके पश्चात् क्रमशः स्वामीजी के पत्रों में दरिद्रों, उपेक्षितों की सेवा और शिक्षा-दान के बारे में मनोनिवेश करने पर बल देने लगे। अतः अपने मन में उठे प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये गुरुभाइयों ने भक्तप्रवर गिरीश घोष की सहायता ली एवं उनको मिले स्वामीजी के पत्र से मन की चंचलता को शान्त किया। इसके बाद १९ फरवरी, १८९७ ई. में स्वामीजी के विदेश से लौट आने पर और १३ फरवरी, १८९८ ई. मठ के गंगाजी के पश्चिमी तट पर स्थानान्तरित होने तक आलमबाजार मठ में स्वामीजी के साथ वार्तालाप और उनके भ्रमण के समय लिखे पत्रों से भारतवासियों को घोर तमसाछन्न अवस्था से जागृत करने के प्रयास पर भी गुरुभाइयों के संघबद्ध होकर कार्य करने की विस्तृत जानकारी मिलती है। स्वामीजी विदेश से स्वदेश आकर गुरुभाइयों, शिष्यों एवं भक्तों के सम्मुख बैठकर अपने विचारों को कार्यान्वित करने के लिये विस्तार से चर्चा करते थे। स्वामीजी के मन के शक्तिशाली और असीम उदार होने में पिछले सात वर्षों में हुए अद्भुत परिवर्तन को देखकर सभी आश्चर्यचकित थे। स्वामी स्वरूपानन्द के प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामीजी ने कहा था कि वराहनगर मठ में समयानुरूप जैसा जीवन आवश्यक था, वैसा किया, परन्तु इस समय यह नई व्यवस्था आवश्यक है। गुरुभाइयों और नवीन संन्यासियों द्वारा स्वामीजी के नये विचारों को आत्मसात् करने के पहले ही जून, १८९७ ई. में कलकत्ता और आसपास के क्षेत्रों में भूकम्प से बहुत से भवन क्षतिग्रस्त हुए थे, आलमबाजार मठ में भी भवन को बहुत क्षति पहुँची थी। अतः स्थान परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक हो गया था। अत्यन्त प्रयास के पश्चात् अन्ततः गंगा के पश्चिमी तट पर भूखण्ड प्राप्त हुआ और यह निर्णय लिया गया कि इस स्थान पर भवन आदि न बनने तक निकट एक उद्यान भवन में अस्थाई रूप से अवस्थान किया जायेगा। तदनुरूप

आलमबाजार मठ

मठ पूर्व परिचित श्रीनीलाम्बर मुखोपाध्याय के उद्यानभवन में स्थानान्तरित किया गया।[२०]

पुनः आलमबाजार मठ के पर्व की चर्चा में अग्रसर होवें। स्वामीजी १९ फरवरी, १८९७ को आलमबाजार मठ में आये थे। उन्होंने लगभग एक वर्ष दार्जिलिंग, श्रीनगर, लखनऊ आदि स्थानों पर समय व्यतीत किया। इस एक वर्ष में अनुमानतः पचास दिन उन्होंने आलमबाजार मठ में अवस्थान किया था। स्वामी ब्रह्मानन्द उत्तर भारत के कुछ

तीर्थस्थानों पर तपस्या करके जनवरी, १८९५ में इस मठ में लौटे थे। स्वामी तुरीयानन्द और स्वामी शिवानन्द एक साथ दिसम्बर, १८९४ ई. में यहाँ लौटे थे। स्वामी तुरीयानन्द ने अधिकांश समय इस मठ में बिताया। स्वामी शिवानन्द ने दक्षिण भारत जाकर विदेश से लौटे स्वामीजी का मदुरई में स्वागत किया और उनके साथ ही कलकत्ता लौटे। स्वामीजी के अनुरोध पर वे श्रीलंका वेदान्त प्रचार हेतु गये और फरवरी, १८९७ ई. में मठ लौटे। स्वामी प्रेमानन्द वृन्दावन में कुछ वर्ष कठोर तपस्या में रत थे, यहाँ उनके साथ ब्रह्मचारी कालीकृष्ण (संन्यास के बाद स्वामी विरजानन्द) भी थे। स्वामीजी के कलकत्ता पहुँचने के चार-पाँच दिन उपरान्त दोनों आलमबाजार मठ लौटे। स्वामी निरंजनानन्द श्रीलंका और दक्षिण भारत में रामकृष्ण-भावधारा का प्रचार कर १८९५ ई. में श्रीरामकृष्ण-जन्मोत्सव के पहले मठ लौटे। स्वामी योगानन्द प्रयागराज एवं काशी में कठोर तपस्या करके जीर्ण शरीर लेकर १८९२ ई. में मठ लौटे। तत्पश्चात् समय-सुविधानुसार वे श्रीमाँ की सेवा में संलग्न रहते थे। अत: मठ में वे कम ही रहते थे। स्वामी सारदानन्द उत्तर भारत के तीर्थदर्शन और तपस्या आदि कर सितम्बर, १८९१ ई. में वराहनगर मठ में लौटे एवं परवर्ती समय स्वल्पकाल छोड़कर अधिकतर समय आलमबाजार मठ में ही रहते थे। फरवरी, १८९६ में स्वामी विवेकानन्द के आह्वान पर वे इंग्लैण्ड गये थे। वहाँ से अमेरिका जाकर वेदान्तप्रचार कर पुन: स्वामीजी के निर्देशानुसार जब भारत लौटे, तब मठ नीलाम्बर मुखर्जी के उद्यानभवन में स्थानान्तरित हो चुका था। दीर्घकाल तक प्रव्रज्या करके स्वामी अभेदानन्द अक्तूबर, १८९२ में मठ लौटे थे। १८९५ में श्रीरामकृष्ण जन्मोत्सव के पश्चात् पुन: तीर्थदर्शन करने निकले और स्वामीजी के निर्देशानुसार १८९६ के मध्य में इंग्लैण्ड की यात्रा के लिये प्रस्थान किये। स्वामी अद्भुतानन्द ने १८९१ ई. से १८९७ ई. तक अधिकतर गंगातट पर ही व्यतीत किया था। आलमबाजार मठ में स्वामी अद्वैतानन्द का निवास स्वल्प काल का ही था। सम्भवत: १८९४ ई. के पूर्व से ही वे काशी में वंशी दत्त के गृह में रहकर जप-ध्यान करते थे। स्वामीजी ने कलकत्ता लौटकर उन्हें सादर मठ में आने को कहा। अत: उन्होंने अविलम्ब काशी से वापस आकर मठ-जीवन के अनुरूप दिनचर्या आरम्भ कर दी। यहाँ तक कि स्वामीजी के इच्छानुसार ६९ वर्ष की उम्र में लघुकौमुदी का अध्ययन भी आरम्भ किया था। स्वामी अखण्डानन्द वराहनगर मठ के आरम्भिक दिनों में ही प्रव्रज्या में निकल गये थे। तीर्थभ्रमण तथा साधना कर, कुछ वर्षों तक राजस्थान

आलमबाजार मठ में स्वामीजी का कमरा

के खेतड़ी और नाथद्वारा में स्थानीय बालकों के लिए शिक्षा की व्यवस्था कर १८९५ में आलमबाजार मठ लौट आये थे। स्वामी त्रिगुणातीतानन्द ने परिव्राजक जीवन समाप्त कर अप्रैल, १८९२ ई. में आलमबाजार मठ लौटकर कुछ दिनों तक निवास किया था। पुन: १८९४ ई. में तीर्थदर्शन के उद्देश्य से कैलाश की यात्रा की। कलकत्ता लौटकर कुछ स्थानों पर गीता, उपनिषद् आदि पढ़ाया तथा तीन ब्रह्मचर्य आश्रम स्थापित किये। इन्हीं दिनों 'इण्डियन मिरर' पत्रिका में अपनी तिब्बत-भ्रमण का विवरण भी प्रकाशित किया। स्वामी सुबोधानन्द अल्प समय ही आलमबाजार मठ में थे। दीर्घकाल तक तीर्थदर्शन, तपस्या आदि कर वे मार्च, १८९८ ई. में जब लौटे, तब मठ गंगाजी के पश्चिम तट पर आ चुका था। स्वामी विज्ञानानन्द (उस समय हरिप्रसन्न चट्टोपाध्याय) इटावा (उत्तरप्रदेश) में जिला अभियन्ता (इंजीनियर) के पद पर कार्यरत थे। स्वामीजी के स्वदेश वापस आने पर विज्ञानानन्दजी नौकरी से त्यागपत्र देकर अप्रैल, १८९७ ई. में आलमबाजार मठ पहुँचे तथा बेलूड़ मठ में मठ व मन्दिर की स्थापना हो जाने पर ९ अगस्त, १८९९ ई. को आत्मसंन्यास ग्रहण किया। उपरोक्त संक्षिप्त विवरण श्रीरामकृष्ण देव के संन्यासी शिष्यों के बारे में था। **(क्रमश:)**

रामकृष्ण भावधारा से क्यों जुड़े हैं?

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

संसार में हमें जो भी परिस्थितियाँ मिली हैं, वे हमारे कर्मों का ही फल हैं। अपने-अपने संस्कारों के अनुसार सबकी कर्म में रुचि अलग-अलग होती है। किन्तु किसी भी परिस्थिति में छाड़िये न हिम्मत बिसारिये न हरिनाम। भगवान की उपासना पूजा-पाठ कभी न छोड़ें। उपासनासाधना एकदम व्यक्तिगत बात है। हम साधना में लगे रहें।

सारी सुविधायें मिलने के बाद भी अधिकांश लोग दुखी हैं, अशान्त हैं। क्यों? क्योंकि भगवान से नहीं जुड़े हैं। हमें सोचना चाहिए कि हम रामकृष्ण-भावधारा से क्यों जुड़े हैं? क्या स्वार्थ के लिए जुड़े हैं? यदि ऐसा है, तो कभी शान्ति नहीं मिलेगी। अरे हम भगवान से जुड़ने के लिये रामकृष्ण-भावधारा से जुड़े हैं। जब हम भगवान से जुड़ेंगे, तभी भक्ति मिलेगी, तभी हमारे जीवन में शान्ति मिलेगी। इसके लिये हमें भगवान से प्रार्थना करनी चाहिये और ईश्वर से ईश्वर को ही माँगना चाहिए। भगवान से प्रार्थना करें कि प्रभु, मेरा भी कल्याण हो और सबका कल्याण हो। दूसरों के लिए प्रार्थना करने से अपना ही कल्याण होता है। प्रार्थना से, जप करने से हमारे मन में स्थिरता आती है। प्रार्थना में बहुत शक्ति सभी के तनाव का एक ही कारण है कि लोग यह नहीं सोचते कि वे क्या चाहते हैं? संसार या भगवान? शान्ति तो भगवान के प्राप्त होने पर है, उनके शरणागत होने में ही है। अपनी सामर्थ्य के अनुसार दूसरों की सेवा करो, लेकिन प्रतिदान की आशा मत करो। भक्त को परनिन्दा और परचर्चा से बचना चाहिए, द्वेष से बचना चाहिए। जो तुम्हें मिला है, उसमें संतुष्ट रहो। नहीं तो मन को कष्ट होगा।

हमें यह देखना है कि २४ घंटों के जीवन में हम भगवान के लिए कितना समय देते हैं। जैसे छोटे बच्चे को माँ नहीं दिखती है, तो रोने लगता है, माँ को देखने लिए व्याकुल होता है, वैसे ही हममें भी भगवान के लिये व्याकुलता आनी चाहिए। जैसे बच्चा खेलता रहता है और माँ काम करते-करते अपने बच्चों को देखती रहती है, वैसे भगवान भी हमें देख रहे हैं। हमारे मन में भगवान के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रहना चाहिए।

हमें भी ऐसा कुछ करना है कि भगवान हमारे पीछे रहें। भगवान दो आदमी के पीछे पड़ते हैं। पहला दुष्ट बुद्धिवाले के और दूसरा भक्तों के पीछे लगे रहते हैं। भगवान का प्रिय स्थान है भक्तों का हृदय। जब भक्त उन्हें प्रेम से पुकारते हैं, तो भगवान दौड़कर आते हैं।

भगवान हमारे सामने खड़े हैं कि कब इनके हृदय में मुझे स्थान मिले, पर लोग संसार में इतने फँसे हैं कि भगवान की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। जैसे दाँत के दर्द से हमारा मन सतत दाँत की ओर ही जाता रहता है, वैसा ही हमारा मन सतत भगवान की ओर जाना चाहिए।

लोभ हमें भगवान से जुड़ने नहीं देता। हम सभी के मन में लोभ की वृत्ति है। उसको कैसे मिटावें? जब हमारे मन में लोभ आये, उसी समय भगवान की शरण में जाना चाहिए और निर्लोभी होने के लिये भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। भगवान ने जो कुछ भी, जितना भी दिया है, उसमें संतुष्ट रहना चाहिये।

हमारा हृदय आकाश के समान विशाल और उदार होना चाहिए। हमारे हृदय में भगवान के लिए स्थान बनाना चाहिए। जीवन में एक क्षण भी भगवान के नाम के बिना न रहे। उसके लिए दैनिक जीवन में नियम बना कर भगवान का स्मरण करते रहें। भगवान के शरणागत होने से कभी बुरा फल नहीं मिलता। भगवान कहते हैं, चौबीस घंटे मैं तुम्हारे पास खड़ा हूँ, पर तुम्हारा मेरी ओर ध्यान ही नहीं है। मोह में भरी वासनाओं और सांसारिक इच्छाओं के कारण हमारा मन भगवान की ओर नहीं जाता। कोई भी काम करने से पहले भगवान को याद करो। भगवान का नाम लेने से संसार की इच्छायें कम हो जायेंगी और भगवान के प्रति भक्ति हो जायेगी, पूरा जीवन भगवान के शरणागति में ही रहेगा। उससे शान्ति और आनन्द मिलेगा। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (२४)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

अहं नारायणो यद्वद गजो नारायणस्तथा।
कस्माद्दुरं गमिष्यामि कुतो नारायणाद्भयम्।।४८।।

– मैं जैसे नारायण हूँ, वैसे ही हाथी भी नारायण है। मैं क्यों हटूँगा? नारायण से नारायण को क्या भय है?

नापासरद् विचिन्त्येति तदाकृष्य स तं करी।
करेण प्राक्षिपद्दूरं तस्मात् स पीडितो भृशम्।४९।।
समुत्थाय ततः शिष्यः कष्टेन महता तदा।
गुरो सकाशमागत्य विस्तरेण न्यवेदयत्।।५०।।

– यह सोचकर वह वहाँ से नहीं हटा। अन्त में हाथी ने उसे सूँड़ से उठाकर दूर फेंक दिया। उससे उसे बहुत चोट लगी। बाद में बड़े कष्ट से उठकर गुरु के पास आकर उसने सारी घटना विस्तृत रूप से बतायी।

तमुवाच गुरुर्वाढं भोः साधु भाषितं त्वया।
सत्यं नारायणस्त्वं वै नारायणो गजोऽपि च।।५१।।
निषादिरुपिना तेन नारायणेन वै तदा।
सम्यग्व्यहितो त्वं नारायणं गजोपरि।।
किमर्थं श्रुतवान्नेव तं गजारोहरूपिणम्।।५२।।

– गुरु ने कहा – तुमने ठीक ही कहा है – तुम नारायण हो और हाथी भी नारायण है, किन्तु जब ऊपर से महावत रूपी नारायण ने तुमको सावधान होने के लिये कहा था, तब तुमने महावत नारायण की बात क्यों नहीं सुनी?

कीदृशोऽसौ सतां रोषः रेखेव सलिलोपरि।
जलरेखेव रोषोह्यं सतां शाम्यति तत्क्षणात्।।५३।।

– सज्जनों का क्रोध जानते हो कैसा है? जैसे जल का दाग। जल का दाग तुरन्त मिट जाता है, वैसे ही सज्जनों का क्रोध भी तुरन्त शान्त हो जाता है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३६८ का शेष भाग

प्राप्ति होती है। गुरुभक्त के हृदय में ईश्वर का निवास होता है। गुरु का भक्त ईश्वर के मन का दर्पण होता है। ईश्वर का नाम है शान्ति का सागर, गुरु के द्वारा ही उसकी उपलब्धि होती है। दिन-रात उस प्रभु का ध्यान कर, तू उस प्रभु में विलीन हो जायेगा।।''[११] ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. श्रीरामकृष्ण देव की वाणी, पृ.३९ **२.** श्रीरामचरित-मानस,४/१७ **३.** वही, ७/१२०/२८-३२ **४.** वही, ७/३३-३७ **५.** वही, ७/१२१ (क) **६.** वही, ७/१२१ (ख) **७.** वही, ७/१२१/१ **८.** वही, ७/१२१/५-८ **९.** वही, १/७९/८ **१०.** श्रीरामकृष्ण देव की वाणी, पृ. ३९ **११.** गुरुनानक की वाणी, पृ.२९,३२

कविता

गुरु हरते अज्ञान-तिमिर को

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

जीवन अपना धन्य बनाने, मैं करता गुरु महिमा-गान ।
गुरु हरते अज्ञान-तिमिर को, देकर परम तत्त्व का ज्ञान ।।
सकल देव गुरु में ही बसते, गुरु ही परम ब्रह्म-अभिज्ञान।
जीवन में सद्गुण वे लाते, करते षड्रिपु का अवसान।।
गुरु की कृपा प्राप्त करके जन, सद्गुण से होते द्युतिमान ।
सकल जगत ईश्वरमय दिखता, जीवन का होता उत्थान ।।
गुरु शाश्वत हैं नित्य निरंजन, वे ही सकल गुणों की खान।
सत्यज्ञान का अलख जगाते, वचन निकलते वेद समान ।।
आत्मज्ञान की दीप्त शिखा से, करते जीवन प्रकाशवान।
कर्मबन्ध सत्वर है कटता, पाकर उनकी कृपा महान ।।
गुरु आनन्दकन्द सुखसागर, करते हैं भवरोग निदान।
माया-मोह-भ्रान्ति हरकर वे, करते साधक जन-कल्यान।।
गुरु को छोड़ नहीं है कोई, जो देवे जीवन-पहचान।
गुर ही मात-पिता-ईश्वर हैं, धर्ममार्ग में नित गतिमान ।।
गुरु की कृपा परम पद मिलता, जीवन के कटते व्यवधान।
गुरु-चरणों की सेवा में है, अर्पित मेरा तन-मन प्रान ।।

परिस्थितियों से हार न मानो

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बौने कद का, झुकी पीठवाला, उदासी-से भरे चेहरे वाला, गलियों में छोटे-छोटे पग से इधर-उधर घूमने वाला, दुबले-पतले शरीर वाला, उदासी-भरी धीमी चाल चलने वाला, एक गोलाकार पुराना कनटोप पहने हुए, रुलाने वाले संकल्पों के कारण चिड़चिड़ा बना हुआ, कनटोप के नीचे के धूल से सने दो पट्टे, गले में मफलर पहने, बिना दस्तानों के लम्बे-लम्बे हाथों वाला तथा अस्त-व्यस्त मुड़े-तुड़े, ढीले-ढाले जूते पहने रहनेवाला व्यक्ति क्या कभी जीवन में सफल हो सकता है?

हाँ, ऐसा ही एक युवक था, जिसका प्रारम्भिक जीवन ऐसा था।

युवको, परेशानियाँ, कठिनाइयाँ हम सभी के जीवन में आती हैं। हममें से कुछ लोग इसका डटकर सामना करते हैं, लेकिन दुख की बात है कि हममें से अधिकतर परेशानियों से घबराकर हार मान लेते हैं।

युवको ! तुमने कभी ऐसा देखा या सुना है कि किसी के जीवन में दुख या परेशानी न आयी हो? क्या तुम ऐसे लोगों से कभी मिले हो कि जिसके जीवन में कभी दुख-कष्ट न आया हो?

क्या कोई ऐसा है?

शायद संसार में ऐसा कोई नहीं होगा, जिसके जीवन में परेशानी या दुखों का तूफान न आया हो।

युवको, ऐसा ही एक युवक था जिसने जीवन की विपरीत से विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए अपनी बुद्धिमत्ता, साहस, भावुकता, विश्वसनीयता, अच्छा स्वभाव इत्यादि गुणों के कारण विश्व इतिहास में अपना नाम अमर कर गया।

युवको जानना चाहोगे उस युवक का नाम?

जिसने कहा था, ''मैंने अपनी तलवार कभी नहीं खींची। मैंने अपनी दृष्टि से युद्धों को जीता है, न कि अस्त्रों से।'' वह युवक और कोई नहीं नेपोलियन बोनापार्ट है।

नेपोलियन बोनापार्ट का जीवन साहस का जीवन है। युवको, उसका जीवन हमें अपने जीवन में कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना करके विजयश्री प्राप्त करने की प्रेरणा देता है।

नेपोलियन फ्रांस का एक बहादुर, निडर और महान शासक था। जो इतिहास के पन्नों में संसार के महान विजेता और सेनापति के रूप में जाना जाता है।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक शिष्य से कहा था, ''तू क्या कह रहा है? डरपोक, कापुरुष कहीं का ! असम्भव कह-कहकर तुमलोगों ने देश को बर्बाद कर डाला है। मनुष्य की चेष्टा से क्या नहीं हो सकता?''

नेपोलियन का कहना था, असम्भव शब्द केवल मूर्खों के शब्दकोष का शब्द है। उसने अपने जीवन में बहुत से असम्भव कार्य को सम्भव किया था। उसको जोखिम भरे कार्य करना अच्छा लगता था।

नेपोलियन को युद्ध करने के लिए आल्पस पहाड़ को पार करके जाना था। उसके सैनिकों ने आल्पस पहाड़ की कठिनाइयों के विषय में सुना था। उनलोगों को मालूम था कि इसे पार करना असम्भव है। नेपोलियन जब युद्ध करने निकला तो रास्ते में उसे एक बुजुर्ग महिला मिली। उस महिला ने उससे कहा कि वह अपनी सेना को लेकर वापस लौट जाये, क्योंकि आजतक जिसने भी आल्पस पहाड़ को पार करने की कोशिश की है, वह जिन्दा नहीं बचा है।

यह सुनकर उसके सैनिक डर गये, लेकिन नेपोलियन डरा नहीं और उसने उस महिला को अपने कीमती हीरों

का हार देकर कहा, 'मुझे जोखिम भरा काम करना पसन्द है और तुमने इस पहाड़ के विषय में और अधिक जोखिम बताकर मेरा हौसला और भी ज्यादा बुलन्द कर दिया। अगर मैं आल्पस पहाड़ को पार कर लेता हूँ और जीवित लौट कर आता हूँ, तो तुम यह बात सबको बताना।

यह बात सुन वह बुजुर्ग महिला बहुत प्रभावित हुई और उसे आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम यह पहाड़ पार कर अपने लक्ष्य में सफल होकर अवश्य आओगे।

नेपोलियन बोनापार्ट

लेकिन सैनिकों ने पहाड़ पर जाने से मना कर दिया। तब नेपोलियन ने सभी सैनिकों को बुलाया और कहा, 'क्या तुमने कभी आल्पस पहाड़ को देखा है?

सैनिकों ने कहा – नहीं।

तब नेपोलियन ने कहा तुम सब मेरे साथ आगे बढ़ो, जब आल्पस पहाड़ आयेगा, तो मैं तुम लोगों को बता दूँगा, फिर तुम लोग बता देना कि तुम लोगों को आगे बढ़ना है या नहीं।

२-३ दिन चलने के बाद उनलोगों को एक पहाड़ दिखाई दिया, तो सैनिकों ने नेपोलियन से पूछा – क्या यह आल्पस पहाड़ है?'

तो उसने जवाब दिया – नहीं। यह तो बहुत छोटा पहाड़ है। इससे ३-४ गुना बड़ा एक और पहाड़ आयेगा, वही आल्पस पहाड़ है।

यह सुन उसकी सेना आगे बढ़ गई। उस पहाड़ को पार करने के बाद वे सब एक विस्तृत मैदान में पहुँचे, जहाँ केवल दूर तक मैदान ही मैदान था।

यह देख सैनिकों ने नेपोलियन से पूछा आल्पस पहाड़ कितनी दूर है?

यह सुन नेपोलियन बोनापार्ट जोर से हँसा और कहा – कौन-सा आल्पस पहाड़? हम तो उसे पार कर आये हैं।

यह सुन सैनिकों को यह विश्वास नहीं हुआ कि इतनी आसानी से हम उसे पार कर आये?

नेपोलियन बोनापार्ट के उठाये इस कदम ने उसके सैनिकों का उत्साह अत्यन्त बढ़ा दिया और उसने उस युद्ध में भी विजय प्राप्त किया।

नेपोलियन को अपने ऊपर पूरा विश्वास था। यही कारण था कि उसे अपने जीवन में बहुत बार सफलता मिली, जिसने उसे सिपाही से फ्रांस का सम्राट बना दिया। नेपोलियन बोनापार्ट की लम्बाई कम थी इसलिए उसे लिटिल कारपोलर भी कहा जाता है। लेकिन अपने बुलन्द हौसलों के कारण उसने जिन बुलन्दियों को छुआ उसे चुनौती देना किसी बहादुर योद्धा के लिये भी सम्भव नहीं था।

युवको, नेपोलियन बहुत परिश्रमी था। उसने कहा था, मैं सदा कार्य में लगा रहता हूँ और बहुत अधिक विचार करता हूँ। यदि मैं किसी अवसर पर कार्य को निपटाने को पूरी तरह तैयार होता हूँ, तो ऐसा तभी होता है, जब सबसे छोटी चीज को करने से पूर्व ही मैं उससे सम्बन्ध रखने वाले सभी छोटे-बड़े पहलुओं पर पर्याप्त समय तक गौर कर चुका होता हूँ। सर्वप्रथम मैं सम्बन्धित विषय की सभी सम्भावनाओं पर विचार करता हूँ, फिर सोचता हूँ कि मुझे किस समय क्या करना है। हर चीज मेरे दिमाग में चलती रहती है। चाहे मैं उस वक्त कार्यालय में होऊँ या सिनेमा हॉल में। मैं कार्य करने के लिए रात्रि में भी जग जाता हूँ।

नेपोलियन का अपने मन, बुद्धि पर पूर्ण नियंत्रण था, इस विषय में वह स्वयं कहता है, जब मैं किसी बात को अपने दिमाग से बाहर निकालकर फेंक देना चाहता हूँ, तो मैं उसे सदा के लिए समाप्त मान लेता हूँ और दूसरे विषय पर सोचने लग जाता हूँ। दो विषय कभी एक साथ मिलते नहीं हैं, इसलिए उन्हें पृथक् करके देखने की मुझे चिन्ता ही नहीं रहती और हर समय चिन्तन करते रहने के बावजूद मैं ऊबता नहीं हूँ। जब मुझे सोने की आवश्यकता होती है, तो मैं अपने दिमाग को बन्द करके एकदम सो जाता हूँ।

अंजाने राहों पर वीर ही आगे बढ़ा करते हैं। कायर तो परिचित राह पर तलवार चमकाया करते हैं, यह कहना था नेपोलियन बोनापार्ट का।

नेपोलियन का आत्मविश्वास, उसका परिश्रम, उसकी उद्यमशीलता और उसकी सफलता उसकी मृत्यु के बाद भी कई पीढ़ियों तक युवाओं के लिए प्रेरणा और ऊर्जा का स्रोत बनी रहेगी। ○○○

श्रीरामकृष्ण का आकर्षण

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

अनुवाद – अवधेश प्रधान, वाराणसी

(गतांक के आगे)

गोपाल की माँ

अघोरमणि देवी। गोपाल की माँ नाम से सुपरिचित हैं। कामारहाटी में पटलडांगा के गोविन्दचन्द्र दत्त की ठाकुरबाड़ी। यहीं बालविधवा अघोरमणि का आश्रय था। दत्त की पत्नी ठाकुरसेवा में हमेशा व्यस्त रहतीं। उनकी संगिनी थीं अघोरमणि। दत्त लोगों की ठाकुरबाड़ी के दक्षिणी भाग में एक छोटी-सी कोठरी में अघोरमणि प्राय: तीस बरस से जप-तप इत्यादि करती हुई गोपाल की सेवा करती आ रही थीं। दत्त की पत्नी के साथ वे एक बार काशी, गया, मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग आदि तीर्थों का दर्शन कर आई थीं। १८८४ ई. का अगहन महीना। दत्तगृहिणी ने श्रीरामकृष्ण परमहंस का नाम सुन रखा था। साधुसंग की उनकी प्रबल इच्छा थी, उस पर भी एक परमहंस इतने निकट रहते हैं ! संगिनी अघोरमणि को साथ लेकर एक शुभ दिन को नौका के द्वारा दक्षिणेश्वर में उपस्थित हुईं। ध्यान रखना होगा कि उस समय स्त्रियाँ सब जगह बेरोक-टोक नहीं जा सकती थीं। दक्षिणेश्वर में पहुँचते ही श्रीरामकृष्ण ने उनको सादर स्वीकार किया। उन्होंने उन्हें अपने कमरे में बैठाकर कुछ उपदेश देकर और भजन सुनाकर पुन: आने का आमंत्रण देते हुए उस दिन विदा कर दिया। दत्तगृहिणी ने श्रीरामकृष्ण के कामारहाटी की ठाकुरबाड़ी में आने का आमंत्रण दिया। श्रीरामकृष्ण भी आमंत्रण स्वीकार करके बाद में एक दिन वहाँ गए और संकीर्तन, नृत्य आदि किया और प्रसाद ग्रहण करके लौट आए।

गोपाल की माँ

प्रथम दर्शन के दिन अघोरमणि के मन में श्रीरामकृष्ण के प्रति एक प्रबल आकर्षण अनुभव हुआ। उन्होंने सोचा, ''ये अच्छे हैं, सच्चे साधुभक्त हैं और इनके निकट फिर समय मिलने पर आऊँगी।'' कुछ ही दिनों बाद उनके मन में श्रीरामकृष्ण की चिन्ता जाग्रत हुई। साथ-ही-साथ उसी आकर्षण में वे एकाकी जप करते-करते दक्षिणेश्वर चल पड़ीं। साथ में दो-तीन पैसे के सस्ते संदेश ले लिये थे। ब्रजधाम में जैसे गोपियाँ सब कुछ भुलाकर दूध, माखन लिये हुए गोपाल के दर्शन को जातीं, उसी प्रकार का उनका भाव था। दक्षिणेश्वर में पहुँचते ही श्रीरामकृष्ण ने कहा, ''आई हो? मेरे लिए क्या लाई हो, दो।'' अघोरमणि लज्जा गईं। कैसे वे इस प्रकार का संदेश उनको दें? भागवत की कहानी याद आती है। द्वारका में सुदामा श्रीकृष्ण के दर्शन को गए थे। गरीब सुदामा मित्र के लिए अपने साथ चिउड़े का लड्डू ले गए थे। जाते ही सोच और संकोच में पड़ गए। किस प्रकार वे यह चीज राजा श्रीकृष्ण के हाथ में दें? लेकिन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने जबर्दस्ती यह चीज उनसे लेकर खाना शुरू कर दिया। यहाँ श्रीरामकृष्ण ने भी यह संदेश परम तृप्ति के साथ खाया। साथ ही साथ वृद्धा को परामर्श दिया, ''तुम पैसा खर्च करके संदेश क्यों लाती हो? नारियल के लड्डू बना लेना, वही एक-दो आते समय लेती आना। न हो, तो तुम अपने हाथों जो कुछ पकाना लौकी की सब्जी, चच्चड़ी, आलू-बैगन-बड़ी के साथ सहजन की तरकारी, वही लेती आना। तुम्हारे हाथ का पकाया हुआ खाना खाने की बड़ी इच्छा है।''[११८]

साधु दर्शन को लोग आते हैं, यह सोचकर कि कुछ धर्म की बातें सुनने को मिलेंगी। लेकिन यह तो उलटी बात हुई ! बस खाना-खाना ! अघोरमणि ने सोचा, ''अच्छा

साधु देखने आई, केवल खाऊँ, खाऊँ ! मैं गरीब कंगाल विधवा, कहाँ से इतना खिला पाऊँगी ! दूर हो, अब और नहीं आऊँगी।'' लेकिन कहने से तो नहीं होगा। चुम्बक ने जो पकड़ रखा है ! क्या ही अदृश्य आकर्षण है ! फिर कई दिन बाद अघोरमणि चच्चड़ी पकाकर लेकर दक्षिणेश्वर पहुँचीं। श्रीरामकृष्ण खाकर परितृप्त हो गए। बोले, ''अहा ! क्या भोजन ! मानो अमृत, अमृत !'' अघोरमणि ने फिर सोचा, अब और नहीं। लेकिन फिर कुछ दिनों बाद कुछ और लेकर उपस्थित हुईं। इस प्रकार खाने-पीने को ही लेकर तीन-चार महीने कट गए। सुदीर्घ तीस वर्ष निर्जन भगवान का चिन्तन करते हुए जिनका जीवन बीता, उनके जीवन में यह कैसा लय भंग ! न साधन-भजन, न धर्म-प्रसंग, केवल खाना बनाना और खाने की प्रशंसा सुनना ! वृद्धा सोचने लगीं, ''गोपाल, तुमको पुकारने से यही मिला? ऐसे साधु के पास ले आए, जो केवल खाना चाहता है ! अब नहीं आऊँगी !''[११९]

लेकिन चिन्तन करना ही तो सार है ! ''वह क्या ही विषम आकर्षण है ! दूर जाने पर फिर खींच लेता है।''[१२०] अघोरमणि इतने दिन से जिनका मानसिक चिन्तन करती आ रही थीं, वे रक्तमांस के शरीर में प्रत्यक्ष उपस्थित हैं और उनके हाथ का भोजन खाकर तृप्त हो रहे हैं, यह बात वे उस समय भी समझ नहीं पाई थीं। वे सोच रही थीं, श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर के साधु हैं। लेकिन वे तो एकाधार में अघोरमणि के इष्ट ही हैं। इसीलिए इस आकर्षण का उल्लंघन करना उनके बस की बात नहीं।

अन्त में वह दिन आया। १८८४ ई. का वसंत। रोज की तरह अघोरमणि रात तीन बजे जप में बैठ गईं। जप की समाप्ति के बाद प्राणायाम कर रही थीं, तभी देखा कि श्रीरामकृष्ण उनकी बायीं ओर बैठे हुए हैं। बाद की घटना 'भक्तमालिका' में इस प्रकार है – ''उनके दाहिने हाथ की मुट्ठी बंद थी और मुख पर मृदु हास्य था, जैसा दक्षिणेश्वर में देखा था, ठीक वैसा। सोचा, 'यह क्या ! इस समय ये कहाँ से किस प्रकार आ गए?' अवाक् होकर सोचते-सोचते वृद्धा ने जैसे ही साहस करके अपने बाएँ हाथ से ठाकुर का बायाँ हाथ पकड़ा, इतने में वह मूर्ति अचानक अन्तर्धान हो गई और उस स्थान पर दर्शन दिया दस महीने के शिशु ने – सचमुच के गोपाल ने। वह रेंगते-घिसटते एक हाथ उठाकर वृद्धा के मुँह की ओर देखकर बोला – माँ, माखन दो। ब्राह्मणी तो यह देख-सुनकर स्तंभित रह गई। यह क्या बात हुई ! वे चीत्कार करती हुई रोकर बोलीं – 'बेटा, मैं दुखिनी कंगालिनी हूँ, मैं तुम्हें क्या खिलाऊँगी, दूध-माखन कहाँ पाऊँगी, बेटा !' उस अद्भुत गोपाल ने तो भ्रूक्षेप भी नहीं किया, वह तो खाएगा ही। तब सिकहर से नारियल का लड्डू देकर बोलीं – 'बेटा गोपाल, मैंने तुमको यह तुच्छ वस्तु खाने को दी, इसलिए मुझको ऐसा खाने को मत देना।' जप उस दिन और न हुआ, गोपाल की अपूर्व लीला चलने लगी ! वह गोद में बैठकर माला निकाल लेता, कंधे पर बैठकर, घर भर में घूमता फिरता ! जैसे ही सबेरा हुआ, वैसे ही गोपाल की माँ पागलिनी की भाँति दक्षिणेश्वर को चल पड़ीं, गोपाल को सीने से लगाकर चलते-चलते देखने लगीं, गोपाल के दो लाल लाल गुलाबी पैर छाती के ऊपर झूल रहे हैं।''[१२१]

सबेरे सात बजे अघोरमणि दक्षिणेश्वर में पहुँचीं और जाकर ठाकुर के पास बैठीं। भावाविष्ट ठाकुर भी उनकी गोद में बैठकर खीर-मलाई, मक्खन खाने लगे। बाद में भाव संवरण होने पर श्रीरामकृष्ण छोटी चौकी पर बैठे। और भावाविष्ट अघोरमणि ''ब्रह्मा नाचे, विष्णु नाचे और नाचे शिव'' इत्यादि गाते-गाते नाचती रहीं। और बोलीं, ''अभी गोपाल जो मेरी गोद में था, अभी तुम्हारे भीतर प्रवेश कर गया, अब ये बाहर आ गया। आ बेटा दुखिनी माँ के पास आ।'' उपस्थित भक्तों से वृद्धा की यह अवस्था देखकर श्रीरामकृष्ण ने कहा, ''देखो, देखो, आनन्द से परिपूर्ण हो गई है, उसका मन इस समय गोपाल-लोक में चला गया है !'' स्वामी गम्भीरानन्द ने बहुत सही लिखा है, ''गोपाल ने इस प्रकार कभी ठाकुर के साथ मिश्रित और कभी बाल्य लीला की तरंग उठाकर एक ओर जिस तरह श्रीरामकृष्ण को गोपाल रूप में प्रत्यक्ष कराया, दूसरी ओर उसी तरह गोपाल की माँ को विमुग्ध कर दिया। अघोरमणि आज से सचमुच की 'गोपाल की माँ' हो गईं और ठाकुर भी उनको इसी नाम से पुकारने लगे।''[१२२]

अन्त में पूर्ण शरणागति। कुछ दिन बाद अघोरमणि दक्षिणेश्वर आईं। ठाकुर से कुछ देर बातचीत के बाद नौबतखाने में जप करने बैठीं। जप के अन्त में प्रणाम करके उठीं, ठाकुर पंचवटी की ओर आकर उपस्थित हुए। ठाकुर

ने कहा, ''तुम अब भी इतना जप क्यों करती हो? तुम्हारा तो बहुत हुआ है।'' गोपाल की माँ ने कहा, ''जप नहीं करूँगी? मेरा सब हो गया है?''

ठाकुर – ''सब हो गया है।''

गोपाल की माँ – ''सब हो गया है?''

ठाकुर – ''हाँ, सब हो गया है।''

गोपाल की माँ – ''कहते क्या हो ? सब हो गया है?''

ठाकुर – ''हाँ, तुम्हारा अपने लिए सारा जप-तप हो गया है। तब भी (अपना शरीर दिखाकर) यह शरीर ठीक-ठाक रहे, यह सोचकर इच्छानुसार कर सकती हो।''

ब्राह्मणी ने कहा – ''तो फिर अब से जो कुछ करूँगी, सब तुम्हारा, तुम्हारा, तुम्हारा।''

सचमुच उस दिन उन्होंने जप की माला गंगा में विसर्जित कर दी। बहुत दिन बाद ''कुछ-कुछ तो करना होगा, यह सोच कर वे गोपाल अर्थात् श्रीरामकृष्ण के कल्याण के लिए माला जप करतीं।''[१२३]

१८८५ के उलटा रथ के दिन ठाकुर बलराम मन्दिर में भक्तों के साथ आनन्द मना रहे थे। अघोरमणि नहीं हैं, यह देखकर ठाकुर ने उन्हें लिवा आने को कहा। बलराम बाबू ने तत्काल आदमी भेजा। शाम होने-होने को थी। ठाकुर दुमंजले पर हॉल घर में भगवत् चर्चा कर रहे थे। सहसा बाल गोपाल के भाव में आविष्ट होकर ठाकुर दो घुटने और एक हाथ जमीन पर रखकर घुटरुओं पर चलने की भाँति रखकर एक हाथ उठाए ऊर्ध्वमुख होकर सतृष्ण नयनों से किसी की ओर देखने लगे। ठीक उसी समय अघोरमणि ने प्रवेश किया और ठाकुर का अपने इष्ट गोपाल रूप में दर्शन करके आनन्द मग्न हो गईं। अघोरमणि देवी ने इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण के अदृश्य आकर्षण से स्वयं को 'गोपालेर मा' के रूप में समर्पित किया।

योगीन्द्र मोहिनी विश्वास

'योगेन मेरी जया है, मेरी सखी है, सहचरी है, संगिनी है', यह श्रीसारदा देवी का कथन है। यह बात उन्होंने 'योगिन मा' नाम से परिचित योगीन्द्र मोहिनी विश्वास के बारे में कही थी। खड़दह के प्रसिद्ध विश्वास-वंश के पोष्यपुत्र अंबिकाचरण के साथ योगीन्द्र मोहिनी का विवाह हुआ था। लेकिन भ्रष्ट चरित्र और मद्यपान के आदती अंबिकाचरण कुछ ही दिनों में सब धनसंपत्ति गँवा बैठे और योगीन्द्र मोहिनी का पारिवारिक जीवन क्रमश: अशान्तमय हो उठा। साध्वी योगीन्द्र मोहिनी की सैकड़ों चेष्टाएँ भी जब पति को सन्मार्ग पर लाने में सफल न हुईं, तो अन्तत: हारकर उन्हें पिता के गृह में आश्रय ग्रहण करना पड़ा।

योगीन्द्र मोहिनी के श्वसुर-कुल के साथ बलराम बसु के परिवार की आत्मीयता थी। बलराम बाबू उस समय श्रीरामकृष्ण की कृपा प्राप्त करके धन्य हो चुके थे। बलराम बाबू को एक आम को सबमें बाँटकर खाने का अभ्यास था। स्वयं कृतार्थ होने के बाद उन्होंने अपने सभी आत्मीय स्वजनों को किसी न किसी प्रकार से श्रीरामकृष्ण की कृपा प्राप्त करके धन्य होने का अवसर दिया था। इसी क्रम में उन्होंने संसार ताप से तापित, श्रान्त, विकल योगीन्द्र मोहिनी को १८८३ ई. के किसी एक दिन अपने घर पर आमंत्रित किया। उस दिन ठाकुर बलराम-भवन में आए थे। दुमंजले पर ठाकुर उस समय भाव में खड़े थे। उनके दोनों पैर मतवाले की भाँति डगमगा रहे थे। यह दृश्य देखते ही योगीन्द्र मोहिनी के मन में अतीत की स्मृति कौंध उठी – पति अंबिकाचरण का चित्र। स्वामी गम्भीरानन्द ने लिखा है, ''योगीन माँ ने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग एक शराबी के क्लेशकर साहचर्य में बिताया था। इसलिए वे एक प्रकार से मतवालेपन के विरुद्ध खड्गहस्त थीं। अतएव विपरीत मनोभाव के कारण वे श्रीरामकृष्ण का वास्तविक स्वरूप समझ पाने में असमर्थ थीं। उन्होंने सोचा, ये मदिराप्रेमी शक्तिसाधकों में से ही कोई होंगे।''[१२४]

योगीन्द्र मोहिनी विश्वास 'योगिन माँ'

लेकिन यह उनका अंतिम विचार नहीं था। इसीलिए एक अन्वेषण दृष्टि का सहारा लेकर वे दक्षिणेश्वर और दूसरे स्थानों पर श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने और उनकी बातें सुनने लगीं। धीरे-धीरे उन्होंने समझ लिया कि श्रीरामकृष्ण केवल उनके बचपन से ही चाहे हुए आदर्श-पुरुष नहीं हैं, बल्कि उससे भी अधिक गुणसम्पन्न एक अचिन्त्य महिमाशाली पुरुष हैं। इसलिये उनके आगे जीवन का सर्वस्व समर्पण किया जा सकता है। उनके शरणागत होना ही जीव

का एकमात्र ध्येय है।

वे श्रीरामकृष्ण को जीवन की परम उपलब्धि के रूप में उल्लेख करके ही नहीं रह गईं, आचरण में उन्होंने अपने आप को समर्पित कर दिखाया। १८८५ ई. की २५ जुलाई थी। वचनामृत में उस दिन का विस्तृत वर्णन है। उसे पढ़कर समझा जा सकता है कि श्रीरामकृष्ण ने उस दिन अपने स्वरूप को प्रकट किया था। उस दिन बागबाजार में आनन्द की प्रतिध्वनि उठी थी। रात के आठ बज रहे थे। गोलाप माँ के घर से श्रीरामकृष्ण गनू की माँ अर्थात् योगीन्द्र मोहिनी के घर पर पहुँचे। एकमंजले बैठकखाने में श्रीरामकृष्ण के सम्मुख गाना-बजाना चल रहा था – 'केशव कुरु करुणा दीने कुंजकाननचारी', एसो मो जीवन-उमा' इत्यादि। जलपान के लिए भीतर से बुलावा आने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा, ''यहीं ला दो।'' गोलाप-माँ ने उत्तर में योगीन्द्र मोहिनी की जो बात बताई, वह लक्षणीय है। उन्होंने कहा, ''गनू की माँ ने कहा है, घर में ले आओ, पैरों की धूल पड़ जाएगी, तो मेरा घर काशी हो जाएगा, इस घर में मरूँगी, तो फिर किसी बात की चिन्ता नहीं रहेगी।'' पहली भेंट में जिन्हें 'मदिरासक्त शक्तिसाधकों में से एक' समझा था, उन्हीं श्रीरामकृष्ण के श्रीचरण-स्पर्श से 'घर काशी हो जाएगा', यह स्वभाव ही योगीन्द्र मोहिनी के विश्वास की गहराई का मापक नहीं है क्या?

श्रीमद्भागवत में हम पढ़ते हैं, मध्यरात्रि में यमुना तट पर भगवान वंशीध्वनि करते हैं। उसी वंशीध्वनि से आकृष्ट होकर अपने-अपने गृहकार्य में निरत गोपियाँ सब कुछ भूलकर उनके पास दौड़ पड़ीं। दैवी आकर्षण की उपेक्षा सम्भव नहीं है। उस पुकार पर गृहकार्य, संसार, आत्मीय स्वजन सब पीछे छूट जाते हैं। १८८५ ई. में रथ यात्रा के अगले दिन सबेरे लगभग आठ-नौ बजे ठाकुर ने बलराम मन्दिर से दक्षिणेश्वर को प्रस्थान किया ! ठाकुर तेज कदमों से आगे-आगे चल रहे थे। स्त्री-भक्त पीछे-पीछे कुछ दूर जाकर लौट आईं। लेकिन योगीन माँ तब भी पीछे लगी चली जा रही थीं। बाहर के बरामदे में आकर पीछे मुड़कर योगीन माँ को देखकर खड़े होकर 'माँ आनन्दमयी माँ आनन्दमयी' कहते हुए ठाकुर ने बारम्बार प्रणाम किया। योगीन माँ ने भी प्रत्युत्तर में प्रणाम किया, तो उनके उठते ही ठाकुर ने कहा, ''च च्च च्च ना गो मा, च च्च च ना !'' इससे पहले कभी योगीन माँ कभी गाड़ी, पालकी छोड़कर पैदल सबके देखते राजमार्ग पर नहीं चली थीं, लेकिन आज वे ठाकुर के इस आह्वान की उपेक्षा नहीं कर पाईं। केवल एक बार भीतर जाकर बलराम बाबू की पत्नी से 'मैं ठाकुर के साथ दक्षिणेश्वर जा रही हूँ' कहकर आकर नाव में चढ़ गईं। ठाकुर उनसे सत्प्रसंग करने लगे। दक्षिणेश्वर में पहुँचकर ठाकुर ने उन लोगों को बाजार करने भेजा। प्रसाद ग्रहण करने के बाद सत्प्रसंग के अन्त में शाम हो जाने पर योगीन माँ पैदल चलकर कलकत्ता वापस आईं। ठाकुर ने उस दिन उपदेश दिया था, ''उनके ऊपर सारा भार डालकर रहो न ! आँधी में जूठी पत्तल के समान रहना होता है।'' इसके बाद से यह उपदेश अपने अन्तर में ग्रहण करके योगीन माँ ईश्वर-चिन्तन में जीवन व्यतीत करने लगीं। इस प्रकार के आधार के संबंध में श्रीरामकृष्ण का यह कथन हम स्मरण करते हैं,'' वह नन्हीं कली नहीं है कि थोड़ी देर में ही खिल जाएगी ! वह सहस्रदल पद्म है ! धीरे-धीरे खिलेगा !''

गौरी माँ

पारिवारिक सूत्र से मृडानी या रुद्राणी, संन्यास ग्रहण के बाद गौरी पुरी, श्रीठाकुर और माँ की गौरदासी, साधारणत: जो गौरी माँ के नाम से सुपरिचित हैं, जिनके बारे में स्वामी विवेकानन्द ने एक पत्र में लिखा है, ''गौर-माँ कहाँ हैं? एक हजार गौर-माओं की आवश्यकता है – एक noble stirring spirit (महान और चेतनादायिनी शक्ति)।'' श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में उनका आगमन दैवी आकर्षण का एक महान दृष्टान्त है। बचपन से ही उनके जीवन में धर्म की स्पृहा और वैराग्य का आभास पाया जाता था। वे धीर और स्थिर थीं, किन्तु अन्याय का विरोध करने में अनमनीय दृढ़ता से युक्त थीं। श्रीचैतन्य देव के जीवन के प्रति उनका आकर्षण था। निमते घोला में किसी साधक से दीक्षा प्राप्त करने के थोड़े ही दिनों बाद उन्हें किसी ब्रजरमणी के पास से दामोदर शिला प्राप्त हुई और आजीवन उसकी सेवा-पूजा में उन्होंने स्वयं को लगा दिया। लिखाई-पढ़ाई में भी वे पर्याप्त कुशल थीं। विद्यालय में अध्ययन करते समय ही चंडी, गीता, बहुतेरे देवी-देवता के स्तोत्र, रामायण, महाभारत और मुग्ध बोध व्याकरण के अनेक अंश उन्होंने कंठस्थ कर लिए थे।

संसार के स्वाभाविक नियम के अनुसार विवाह की बात उठी। लेकिन उनकी तो प्रतिज्ञा थी, ''उसी वर के साथ विवाह

करेंगी, जिसकी मृत्यु न हो।'' संसार उन पर नाना युक्तियों, उपायों का प्रयोग करने से विरत न हुआ। वैराग्य प्रवण मृडानी भी अन्ततः गृहत्याग करके दुर्गम पहाड़ी अंचल में चली गईं। ऋषिकेश में तपस्या में रत हो गईं। कुछ काल के बाद अमरनाथ, ज्वालामुखी, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि तीर्थों में पर्यटन किया। इसके अतिरिक्त भारत के अन्यान्य प्रान्तों के कई तीर्थों का दर्शन करके वे वृन्दावन आ गईं। उसी समय श्रीरामकृष्ण के कृपाधन्य बलराम बसु भी वृन्दावन में रह रहे थे। उन्होंने एक दिन गौरी माँ को बताया, ''दीदी, मैंने दक्षिणेश्वर में एक महापुरुष का दर्शन प्राप्त किया है। सनक-सनातन के समान उनका भाव है। भगवत् प्रसंग करते-करते ही उनको समाधि होती है। तुम एक बार उनके दर्शन कर आना।'' गौरी माँ के भाव में कोई परिवर्तन न हुआ। वे यथारीति उत्तराखण्ड में तीर्थदर्शन को चली गईं। इसके बाद माँ का स्वास्थ्य खराब होने का समाचार सुनकर कलकत्ता लौट आईं और माँ का दर्शन करके श्रीक्षेत्र पुरीधाम चली गईं। वहाँ उन्होंने एक बार फिर दक्षिणेश्वर के परमहंस का नाम हरेकृष्ण मुखोपाध्याय नाम के एक वृद्ध के मुँह से सुना। उन्होंने कहा, ''माँ दक्षिणेश्वर में एक असाधारण मनुष्य को देख आया हूँ – सुन्दर रूप है उनका, ज्ञान से परिपूर्ण हैं, प्रेम से लबालब भरे हुए, क्षण-क्षण में समाधि होती है उनको।'' लेकिन तब भी गौरी का मन अचंचल रहा।

गौरी माँ

इसके बाद वे कलकत्ता में आकर बलराम बाबू के मकान पर जब ठहरी हुई थीं, उसी समय एक दिन बलराम बाबू ने दक्षिणेश्वर में साधु दर्शन को जाने का अनुरोध किया, तो गौरी माँ ने कहा, ''जीवन में बहुत साधु दर्शन हुआ है, दादा, किसी नए साधु के दर्शन की इच्छा मुझे नहीं है। तुम्हारे साधु में अगर शक्ति है, तो मुझे खींच लें। उससे पहले तो मैं जाने से रही।''

इतने दिनों पर साधु की शक्ति की परीक्षा का समय आया। इधर श्रीरामकृष्ण मछली को खींच लेने के लिए साज-सामान जुटा रहे थे। भक्त के मन की इच्छा भगवान जान जाते हैं। इसीलिए गौरी माँ के जीवन में भी श्रीरामकृष्ण के आकर्षण का एक दिन अनुभव हुआ। 'श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका' में घटना का वर्णन इस प्रकार है, ''उस दिन गौरी माँ स्नान के बाद दामोदर को सिंहासन पर रखने जा रही थीं कि देखा, वहाँ मनुष्य के दो चरण हैं, पर शरीर के दूसरे अंग नहीं हैं। ध्यानपूर्वक देखा और समझ लिया कि यह आँखों का भ्रम नहीं है। दामोदर को तुलसीदल अर्पित किया, तुलसीदल जाकर गिरा इसी चरणयुगल पर। गौरी माँ बाह्य ज्ञान खोकर भूमि पर गिर पड़ीं। बसु की पत्नी को बहुत देर तक कोई चाल न मिली, तो दरवाजे की फाँक से झाँक कर देखा कि वे तो भूमि पर गिरी हैं और चेतनाशून्य हैं। तीन-चार घंटों के बाद होश आया, तो भी उनके बोल न फूटे। बस इतना ही अनुभव होने लगा कि जैसे उनके हृदय को कोई डोर में बाँधकर खींच रहा है। दिन और रात इसी भाव में कट गया। उषा काल से पूर्व ही बाहरी द्वार पर आकर बाहर जाने की चेष्टा करने लगीं। द्वाररक्षक ने प्रश्न किया, ''आप कहाँ जाएँगी?'' लेकिन गौरी माँ ने कोई उत्तर नहीं दिया। इसी बीच बसु महाशय ने आकर पूछा, ''दीदी, दक्षिणेश्वर के महापुरुष के यहाँ चलेंगी।'' गौरी माँ चुपचाप उनके मुँह की ओर देखती रहीं। इसी को उनकी सहमति जानकर गाड़ी बुलाकर अपनी पत्नी और एक-दो अन्य महिलाओं के साथ गौरी माँ को लेकर बसु महाशय दक्षिणेश्वर पहुँचे। तब तक सुबह हो गई थी। आये हुए भक्तों को देखा, दक्षिणेश्वर के महापुरुष अपने कमरे में बैठकर अपने में डूबे हुए सूत लपेट रहे हैं और गा रहे हैं – माँ काली, यशोदा तुझे नीलमणि कहकर नचाया करती थी, हे करालवदनी, वह रूप अब तूने कहाँ छिपा लिया है? एक बार अपनी तलवार छोड़कर बांसुरी लेकर नाचो न माँ !'' इत्यादि।

''भक्तों के कमरे में प्रवेश करने के साथ ही उनका सूत लपेटना भी समाप्त हुआ। गौरी-माँ समझ गईं कि उनकी अव्यक्त वेदना का स्रोत कहाँ है। उन्होंने विस्मयपूर्वक देखा कि ये ही तो वे पूर्वदृष्ट सजीव चरणयुगल हैं। परन्तु

श्रीरामकृष्ण मानो कुछ जानते ही नहीं थे। उन्होंने बलराम से पूछकर गौरी-माँ का परिचय प्राप्त किया और काफी देर तक उनके साथ धर्म-चर्चा करते रहे। विदा के समय उन्होंने गौरी-माँ से कहा, 'फिर आना, बेटी।'' यह १८८२-८३ की बात है। उस समय गौरी माँ की अवस्था पचीस वर्ष की थी।''[१२५] 'फिर आना, बेटी' – श्रीरामकृष्ण के इस आह्वान ने गौरी माँ के जीवन में श्रीरामकृष्ण के प्रति उनके आकर्षण को और दृढ़ किया। इसीलिए अगले दिन सुबह गंगास्नान के बाद दो पहनने के कपड़े और दामोदर को सीने पर रखकर गौरी माँ दक्षिणेश्वर अकेले पहुँची। ठाकुर ने उनको देखते ही कहा, ''तुम्हारी ही बात सोच रहा था।'' उनकी यह भावना अर्थात् भक्त के मन को आकृष्ट करना और वह आकर्षण अपेक्षा से परे था। गौरी माँ ने साथ ही साथ अपने जीवन की अनेक कहानियाँ और दामोदर के सिंहासन पर श्रीरामकृष्ण के श्रीचरणों के दर्शन का वर्णन करते हुए कहा, ''तुम यहाँ छिपे हुए थे, पहले तो यह मैं समझ ही नहीं पाई बाबा !'' ठाकुर भी साथ ही साथ हँसते हुए बोले, ''तो फिर इतना साधन-भजन कैसे हो पाता।'' इस बात के तात्पर्य का विश्लेषण करके समझा जा सकता है, गौरी माँ ने जिसके आकर्षण में गृहत्याग किया, जिसके दर्शन के लिए पहाड़-जंगल में तपस्या करती रहीं, वही उनके इष्ट जीवन-देवता यहाँ पर बैठकर तरह तरह से डोरी खींच रहे थे। कुशल शिकारी की भाँति खेला-खेलाकर अन्त में मछली को पकड़ लिया। इसीलिए गौरगत-प्राणा गौरी माँ का विचार था, ''श्रीरामकृष्ण और श्रीचैतन्य, ये दोनों अभेद हैं।'' यद्यपि इस सिद्धान्त को शास्त्रों के तर्क की सहायता से इससे पहले भैरवी ब्राह्मणी ने प्रमाणित किया था, तथापि संशयी लोगों ने आपत्ति की कि मनुष्य और देवता एक नहीं हो सकते। किन्तु प्रत्यक्षानुभूति की दृढ़ता के साथ गौरी माँ ने उस दिन संशयग्रस्त जीव के निकट घोषणा की थी, ''जो राम हैं, वही कृष्ण हैं, वही अब रामकृष्ण हैं।'' उत्तरकाल में जब संदिग्धचित्त और भावी संदेशवाहक नरेन्द्र का संशय दूर करने के लिए मृत्युशय्या पर पड़े हुए श्रीरामकृष्ण ने घोषणा की थी, ''जो राम, जो कृष्ण, वही इस समय इस शरीर में रामकृष्ण'', तब हमारे मानस-पटल पर उदित होता है कि श्रीरामकृष्ण के आकर्षण से गौरी माँ के परिवर्तित जीवन में उनका प्रत्यक्ष अनुभव कितना सत्य था !''

श्रीरामकृष्ण ने योग्य अधिकारी के द्वारा काम करा लिया था। वे कई बार गौरी-माँ के पास अध्यात्म पिपासुओं को भेजते। वे भी उनसे अपनी-अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करके तृप्त होते। इस प्रकार युगधर्म 'मातृ जाति के उन्नयन' रूपी कार्य के संचालन शुभारम्भ वे उनके बीच से करा लेते। श्रीमाँ से श्रीरामकृष्ण देव ने कहा था, ''यह क्या कर रहा है, इससे कहीं अधिक तुमको करना होगा।'' इस कार्य की सहायिका के रूप में गौरी माँ को श्रीमाँ के आगे समर्पित करते हुए उन्होंने कहा था, ''हे ब्रह्ममयी, तुम एक संगिनी चाहती थी, यह लो एक संगिनी आ गई।'' एक और दिन सबेरे दक्षिणेश्वर में गौरी माँ फूल तोड़ रही थीं। नौबत के निकट बबूल वृक्ष की शाख पकड़कर ठाकुर ने दाहिने हाथ से जल ढालते-ढालते उनसे कहा, मैं पानी ढ़ाल रहा हूँ, तुम मिट्टी सानो।'' गौरी माँ ने कहा, ''यहाँ मिट्टी कहाँ है जो सानूँगी।'' ठाकुर ने अपनी बात का तात्पर्य समझाते हुए गौरी माँ से कहा, ''मैंने क्या कहा और तुमने क्या समझा? इस देश की नारियाँ बहुत दुखी हैं, तुझको उनके बीच काम करना होगा।'' लेकिन गौरी माँ की निर्जनवास की एकांत इच्छा थी। वे इन सब झंझटों में पड़ना नहीं चाहती थीं। इसीलिए उन्होंने जब कुछ महिलाओं को हिमालय में ले जाकर शिक्षा देने की बात उठाई, तो **ठाकुर ने वह बात रोक कर नवयुगधर्म का तत्त्व समझाते हुए कहा, ''नहीं जी, नहीं, इसी शहर में रहकर काम करना होगा। साधन-भजन बहुत हुआ, इस बार इस जीवन को नारियों की सेवा में लगा, उन्हें बहुत कष्ट है।''**

गौरी माँ के जीवन में श्रीरामकृष्ण का आकर्षण अनुपेक्षणीय था। इसीलिए जीवन का व्रत एक क्षण में स्थिर हो गया। गौरी माँ ने नारियों की शिक्षा-दीक्षा के भारतीय सनातन आदर्श का निर्माण करने के लिए ''श्रीश्रीसारदेश्वरी आश्रम'' की स्थापना की। 'श्रीसारदा मठ' की स्थापना के बहुत पहले ही श्रीमाँ को केन्द्र करके श्रीरामकृष्ण भावादर्श के रूपायन का यह गौरी माँ का प्रयास कितनी कठोर साधना का फल है ! श्रीमाँ ने भी उनके इस कार्य से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर कहा था, ''गौरदासी के आश्रम की बाती तक भी जो उकसा देगा, उसको वैकुंठ की प्राप्ति निश्चित होगी।'' फिर स्वामीजी का यह प्रशंसा-वाक्य भी स्मरणीय है – noble stirring spirit (महान और तेजोमय चेतना) !

शेष भाग पृष्ठ ३९९ पर

प्रश्नोपनिषद् (३७)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

भाष्य – पृथिवी च स्थूला पञ्चगुणा तत्-कारणा च पृथिवीमात्रा च गन्ध-तन्मात्रा, तथा च आपश्च आपोमात्रा च, तेजश्च तेजोमात्रा च, वायुश्च वायुमात्रा च, आकाशश्च आकाशमात्रा च, स्थूलानि च सूक्ष्मानि च भूतानि इत्यर्थः।

भाष्यार्थ – पाँच स्थूल गुणों से युक्त पृथिवी और उसकी कारण – (सूक्ष्म) गन्ध तन्मात्रा; इसी प्रकार जल और उसकी (सूक्ष्म) जल (रस) तन्मात्रा, अग्नि और उसकी (सूक्ष्म) अग्नि (रूप) तन्मात्रा, वायु और उसकी (सूक्ष्म) वायु (स्पर्श) तन्मात्रा, आकाश और उसकी (सूक्ष्म) आकाश (शब्द) तन्मात्रा – तात्पर्य यह कि (सारे) स्थूल पंचभूत और सूक्ष्म पंचभूत;

भाष्य – तथा चक्षुश्च इन्द्रियं रूपं च द्रष्टव्यं च, श्रोत्रं च श्रोत्रव्यं च, घ्राणं च घ्रातव्यं च, रसश्च रसयितव्यं च, त्वक्च स्पर्शयितव्यं च, वाक्च वक्तव्यं च, हस्तौ चादातव्यं च, उपस्थश्च आनन्दयितव्यं च, पायुश्च विसर्जयितव्यं च, पादौ च गन्तव्यं च –

भाष्यार्थ – वैसे ही नेत्र-इन्द्रिय और उसका द्रष्टव्य विषय रूप, कर्णेन्द्रिय और श्रोतव्य विषय, नासिकाएँ और उसका विषय (गन्ध), स्वाद-इन्द्रिय और उसके विषय, त्वचा-इन्द्रिय और उसके स्पर्श करने योग्य विषय, वाणी और उसके द्वारा कथनीय विषय, दोनों हाथ और उसके द्वारा पकड़े जानेवाले विषय, जननेन्द्रिय तथा उसके द्वारा उपभोग्य विषय, गुदा और उसके द्वारा त्याग किये जानेवाले (मल-मूत्र) विषय, दोनों पाँव और उनके द्वारा चले जानेवाले स्थान –

भाष्य – बुद्धि-इन्द्रियाणि कर्म-इन्द्रियाणि तथा च उक्तानि, मनश्च पूर्वोक्तम्, मन्तव्यं च तद्-विषयः, बुद्धिश्च निश्चयात्मिका, बोद्धव्यं च, तद्विषयः, अहङ्कारश्च अभिमान-लक्षणम् अन्तःकरणम् अहङ्कर्तव्यं च तद्विषयः, चित्तं च चेतनावद्-अन्तःकरणम्, चेतयितव्यं च तद्-विषयः, तेजश्च त्वग्-इन्द्रिय-व्यतिरेकेण प्रकाश-विशिष्टा या त्वक्-तया निर्भास्यो विषयो विद्योतयितव्यम्, प्राणश्च सूत्रं य-आचक्षते तेन विधारयितव्यं संग्रथनीयं सर्वं हि कार्य-करण-जातं पारार्थ्येन संहतं नाम-रूपात्मकम् एतावत् एव ।।४/८।।

भाष्यार्थ – इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों के बारे में कहा गया, मन – जिसका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है और उसका विचारणीय विषय, निश्चय करनेवाली बुद्धि और उसका बोधगम्य विषय, अहंकार और उस अभिमान से युक्त अन्त:करण, चित्त और चेतना से युक्त अन्त:करण, तेज – त्वक्-इन्द्रिय के भिन्न – तेज से युक्त त्वचा और उससे प्रकाशित होनेवाला विषय, प्राण – जिसे सूत्र (हिरण्यगर्भ, जो सभी को जोड़ता है) कहते हैं और उसके द्वारा गूँथकर एक साथ संयुक्त रखे जानेवाले समस्त – शरीर तथा इन्द्रियाँ, जो नाम-रूप वाली हैं और किसी अन्य के लिये एकत्र रखी जाती हैं, उनका विस्तार यहीं तक है।

* * *

भाष्य – अतः परं यद्-आत्मरूपं जल-सूर्यक-आदिवद्-भोक्तृत्व-कर्तृत्वेन इह अनुप्रविष्टम् -

भाष्यार्थ – इसके परे – जो आत्म-स्वरूप है, वह – भोक्तृत्व तथा कर्तृत्व के रूप से – जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब की भाँति इस (शरीर) में प्रविष्ट हो गया है। **(क्रमशः)**

गुरुरूपी सूर्य ने मेरे मनरूपी आकाश को आलोकित कर दिया है। श्रीगुरुदेव साक्षात् विष्णु हैं, जो अज्ञानान्धकार को नष्ट करके आत्मानुभूतिरूपी कमल को विकसित कर देते हैं।

– श्रीशंकराचार्य

रामराज्य का स्वरूप (९/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

समुद्रमन्थन की दूसरी प्रक्रिया उन्होंने श्रीभरत के सन्दर्भ में अयोध्याकाण्ड में प्रस्तुत किया। उन्होंने वहाँ पर उस परिभाषा को एक दूसरा नया रूप दिया। उन्होंने इस समुद्र-मन्थन की कथा को आश्रय बनाया। कहा जाता है कि जब देवता और दैत्यों में युद्ध हुआ, तो उस युद्ध में देवता परास्त हुए और दैत्य विजयी हुए। इतना ही नहीं, देवता और दैत्य जब लड़ते थे, तो देवता भी मारे जाते थे और दैत्य भी मारे जाते थे। पर ये दैत्यों के गुरु जो शुक्राचार्य जी हैं, वे दैत्यों को पुन: जीवित कर देते थे और दूसरी ओर देवता मृत्यु के ग्रास बन जाते थे। ऐसी स्थिति में देवता निराश होकर भगवान की शरण में गये और उनसे प्रार्थना की कि हम दैत्यों को कैसे परास्त करें और मृत्यु का ग्रास होने से कैसे बचें। भगवान ने उनसे कहा कि समुद्र में अमृत छिपा हुआ है। उस अमृत को प्रगट करके जब तुम देवता लोग पीयोगे, तभी अमर होकर दैत्यों को परास्त कर सकोगे। समुद्र मन्थन हुआ। लेकिन जब वारुणी निकली, तो वह दैत्यों के हिस्से में आई और समुद्र-मन्थन में जो अमृत निकला, वह देवताओं ने पिया और अमर होकर अन्त में देवता दैत्यों को परास्त करने में सक्षम होकर विजयी हुए।

गोस्वामीजी ने बालकाण्ड में सौन्दर्य लक्ष्मी के सन्दर्भ में श्रीसीताजी को चुना और अयोध्याकाण्ड में प्रेमामृत के सन्दर्भ में श्रीभरत की भूमिका को चुना। उन्होंने कहा कि पुराणों की कथा का जो सत्य है, वह तो हमारे जीवन का ही सत्य है। देवता और दैत्य अन्तरिक्ष में रहते होंगे, वह ठीक है, पर देवता और दैत्य तो प्रत्येक व्यक्ति के अन्त:करण में ही निवास करते हैं। सद्गुण देवता हैं –

सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। १/३०/१४

जो दुर्गुण हैं, वे दैत्य हैं और इस सत्य का अनुभव तो हम सबको जीवन में होते ही रहता है कि अच्छे और बुरे, दोनों प्रकार के विचार हमारे अन्त:करण में आते हैं। पर हमारे अच्छे विचार मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं और बुरे विचार पुन: जीवित हो जाते हैं। शुक्र के रूप में हमारा सारा पाण्डित्य है। शुक्राचार्य बड़े विद्वान हैं, पर वे अमृत बनाने की कला का उपयोग दैत्यों को जीवित करने के लिए करते हैं। इसी प्रकार से हम अपनी सारी बुद्धिमत्ता का प्रयोग बुरे विचारों के पोषण में लगाते हैं। हमारी बुद्धिमत्ता है, मानो शुक्र का प्रतीक है। शुक्र बड़े विद्वान हैं और इसका अभिप्राय है कि हम अपने सारे पाण्डित्य से सारे तर्कों के द्वारा, सारी बुद्धिमत्ताओं के द्वारा बुराइयों का समर्थन करते हैं। यही बुराइयों को जीवित करना है। बुराइयों को जीवित करने का अर्थ यह है कि बुराइयों के पक्ष में, जब बुद्धिमान व्यक्ति उसके पक्ष में बुद्धिमत्तापूर्वक अपना तर्क प्रस्तुत करेगा, तो उसका स्वाभाविक परिणाम होगा कि बुराइयाँ अमर होंगी।

गोस्वामीजी ने कहा कि अच्छे विचार कैसे अमर हों, अच्छे विचार कैसे पुनर्जीवित हों, समाज के सामने यह समस्या आई, साधकों के समक्ष यह समस्या आई कि हमारे सद्गुण, सद्विचार जो मर जाते हैं, वे पुनर्जीवित क्यों नहीं हो पाते? तब भगवान ने समुद्र-मन्थन की प्रक्रिया प्रस्तुत करने का निश्चय किया। यहाँ पर भी यही हुआ।

समुद्र-मन्थन की पृष्ठभूमि क्या है? एक ओर मन्थरा का संकल्प है और दूसरी और महाराज दशरथ का संकल्प है। दशरथ का विचार है कि रामराज्य की स्थापना हो और

मन्थरा का विचार है कि रामराज्य की स्थापना न हो। वहाँ पर भी इस संघर्ष में भी देवत्व, अच्छा विचार पराजित हुआ और बुरा विचार जीत गया। बुरा विचार सफल हो गया। तब मानो भगवान राम के सामने यह कहा गया कि साधक क्या इसी प्रकार से अच्छे विचार करके भी उसे साकार नहीं कर पायेंगे? यह संकल्प क्या उनका अधूरा रहेगा? क्या उनके सद्गुण, सद्विचारों को जीवित करने के लिए, उसे अमर करने के लिए जिस अमृत की आवश्यकता है, क्या उस अमृत की सृष्टि नहीं होगी? गोस्वामीजी ने कहा कि भगवान श्रीराम को यह लगा कि वह अमृत है तो समुद्र में, पर समुद्र में होते हुए भी वह अमृत व्यक्त नहीं था। उसके अव्यक्त रहने के कारण लोग उस अमृत से वंचित थे। रामायण के समुद्र कौन हैं? अयोध्याकाण्ड के समुद्र कौन हैं? गोस्वामीजी ने कहा, भरत ही समुद्र हैं – भरत पयोधि गंभीर।

सद्गुण और दुर्गुण देवता और दैत्य हैं और भरत गंभीर समुद्र हैं। सचमुच आप ध्यान रखिएगा। गोस्वामीजी ने इसे और स्पष्ट कर दिया। उनसे पूछा गया कि क्या रामराज्य की स्थापना केवल श्रीराम के द्वारा नहीं हो सकती थी? क्या भरत के बिना रामराज्य की स्थापना नहीं हो सकती थी? क्या भगवान श्रीराघवेन्द्र सिंहासन पर बैठकर रामराज्य की स्थापना नहीं कर सकते थे? जब अयोध्या के अगणित नर-नारी श्रीराम को अयोध्या के सिंहासन पर बैठे देखना चाहते थे, ऐसी स्थिति में अगर श्रीराम सिंहासन पर बैठ जाते, तो रामराज्य की स्थापना तो हो ही जाती। श्रीराम को चौदह वर्ष के लिए वन जाने की क्या आवश्यकता थी? गोस्वामीजी ने कहा कि वस्तुत: भगवान श्रीराम के सामने समस्या एक गम्भीर समुद्र के मन्थन की थी। यह समुद्र इतना गम्भीर था कि वह अपने अन्त:करण में अमृत को समेटे हुए था और वह समुद्र हैं भरत। अमृत है प्रेम और भरत का व्यक्तित्व है समुद्र। भरत के व्यक्तित्व के समुद्र में प्रेम का अमृत छिपा हुआ था। आपने ध्यान से पढ़ा होगा, सुना होगा कि श्रीभरत के स्वभाव में सदा अपने प्रेम को छिपाने की वृत्ति थी, जो आपको पग-पग पर दिखाई देगी। कभी-कभी किसी ने मुझसे पूछा कि लक्ष्मणजी और भरतजी के व्यक्तित्व में क्या अन्तर है? तो मैंने कहा कि दोनों में वही अन्तर है, जो आकाश और समुद्र में अन्तर है। आकाश भी असीम है और समुद्र भी असीम है। पर दोनों में एक अन्तर है। वह अन्तर यह है कि आकाश की ओर दृष्टि उठाकर आप देखें, तो सारे ग्रह नक्षत्र आपको दिखाई देंगे। स्वच्छ आकाश में आपको वह सब कुछ दिखाई देगा, जो आकाश में है। पर समुद्र? समुद्र के किनारे जाकर आप खड़े हो जाएँ, तो समुद्र के अन्तस्तल में क्या है, समुद्र के किनारे खड़े होने पर भी आपको कुछ नहीं दिखाई देगा। तो दोनों के व्यक्तित्व का अन्तर यही है कि लक्ष्मणजी की जो महानता है, लक्ष्मणजी का जो स्वभाव है, चरित्र है, जो आचरण है, वह तो इतना स्पष्ट है कि कहीं पर भी यह समझने की आवश्यकता नहीं है कि लक्ष्मणजी की भावना क्या है। लक्ष्मणजी का प्रेम तो बिल्कुल स्पष्ट है, बिल्कुल स्पष्ट सामने दिखाई देता है, पग-पग पर दिखाई देता है। श्रीभरत समुद्र हैं। समुद्र में क्या छिपा है, समुद्र मन्थन से पहले समुद्र के रत्नों का ज्ञान किसी को नहीं था। इसलिए भगवान श्रीराम ने चौदह वर्ष के वियोग को जब तक मथानी नहीं बनाया और उस मथानी के द्वारा भरत-समुद्र का मन्थन नहीं किया, तब तक भरत के व्यक्तित्व के जो अद्भुत गुण हैं, जो प्रेम का अमृत है, वह प्रगट नहीं हुआ। ***(क्रमश:)***

पृष्ठ ३९६ का शेष भाग

इस विराट् आन्दोलन के मूल में श्रीरामकृष्ण का आकर्षण था। उसी आकर्षण से मृडानी, रुद्राणी का गौरी माँ में रूपान्तरण हुआ। श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रदत्त 'मिट्टी सानने' का दायित्व उन्होंने अपने समूचे जीवन में निभाया।

अन्तत: आया अंतिम दिन। जिन श्रीरामकृष्ण ने उनको और उनके तपस्याप्रवण को 'जगद्धिताय' कार्य के लिए आकृष्ट कर रखा था, उन्होंने अब अपनी डोरी को अन्तिम बार खींचा। १३४४ वंगाब्द (१९३८ ई.) की शिव चतुर्दशी के दिन गौरी माँ ने कहा, ''ठाकुर डोरी खींच रहे हैं।'' अगले दिन मंगलवार को रात लगभग ८.१५ (आठ बजकर पन्द्रह मिनट) पर नित्य मिलन के लिए श्रीरामकृष्ण ने अंतिम बार डोर खींची और गौरी-माँ शान्ति में निमग्न हो गईं। **(क्रमश:)**

सन्दर्भ सूची – ११८. भक्तमालिका, भाग-२, पृ.४३२ **११९.** वही, पृ.४३३ **१२०.** वही, **१२१.** वही, पृ.४३३-३४ **१२२.** वही, पृ.४३४-३५ **१२३.** वही, पृ.४३६ **१२४.** वही, पृ.४५३ **१२५.** वही, भाग-२, पृ.४८८-८९

गीतातत्त्व-चिन्तन (१६)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

ईश्वर के दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ

भगवान अर्जुन से कहते हैं, 'अत्यन्त कठिनाई से देखे जा सकनेवाले मेरे जिस रूप को तूने देखा, उसको देखने के लिए देवतागण भी नित्य लालायित रहते हैं। परन्तु फिर भी देख नहीं पाते। भगवान मानो यहाँ पर अपने इस रूप की दुर्दर्शनीयता प्रदर्शित करते हैं। यहाँ पर प्रश्न उपस्थित होता है कि अपने किस रूप की दुर्दर्शनीयता की बात भगवान कह रहे हैं? विश्वरूप के सम्बन्ध में या चतुर्भुजरूप के सम्बन्ध में? इस पर व्याख्याकारों में मतभेद है। कोई कहते हैं कि भगवान ने अपना जो विश्वरूप दिखाया, वह देवताओं के लिए दुर्दर्श है। देवता भी इस रूप को देखने के लिए तरसते हैं। तरसना तो उस रूप के लिए होता है, जो सौम्य हो, जो रूप माधुर्य का विस्तार करता हो। पर जो रूप भयावह हो, देखनेवाले के मन में घबराहट पैदा करता हो, उस रूप को देखने की भला कौन इच्छा करेगा? इसीलिए अन्य व्याख्याकारों के मन में भगवान का तात्पर्य अपने चतुर्भुजरूप से था, जिसको देखने के लिए देवताओं के भी तरसने की बात उन्होंने कही थी। अर्थात् देवताओं के समक्ष भी वे अधिकतर उस रूप में प्रकट नहीं होते।

भगवान का विराट्रूप तो उनका कालरूप था। कालरूप में यह जो वर्तमान है, इसका ज्ञान तो हमें है ही। जो अतीत है, उसका ज्ञान भी हमको हो जाता है, क्योंकि अतीत भी किसी समय वर्तमान की श्रेणी में ही था। जैसे अभी जो वर्तमान है, वह अगले ही क्षण में अतीत बन जाता है। अतीत और वर्तमान का ज्ञान मनुष्य को रहता है, पर भविष्य का ज्ञान उसको नहीं होता। भविष्य के ज्ञान के लिए सभी तरसते हैं। इसीलिये ज्योतिषियों की इतनी पूछ होती है। इसी बल पर भविष्यवेत्ता पलते हैं कि स्वाभाविकरूप से मनुष्य के मन में भविष्य के विषय में जानने का आग्रह रहता है। वैसा ही आग्रह भविष्य के प्रति देवताओं में भी रहता है। ऐसा इसलिए है कि देवताओं का पद अनित्य होता है। जो पुण्य हम यहाँ पर सञ्चित करते हैं, उनके फलस्वरूप हम देवता बनते हैं। जब तक पुण्य शेष रहते हैं, तब तक देवता का शरीर उपलब्ध रहता है। ज्योंही पुण्य शेष होते हैं, देवयोनि से हमें मनुष्य-योनि में आना पड़ता है। मन्त्रीजी जैसे अपनी गद्दी की अवधि पता करने के लिए ज्योतिषियों के पास जाते रहते हैं, वैसे ही देवता भी जाते हैं। यही कारण है कि देवता लोग भी भगवान के कालरूप को देखना चाहते हैं। उस रूप को देख लें, तो भविष्य का ज्ञान हो जाए। अर्थात् जिस रूप को देखकर अर्जुन घबरा गया था, उसी रूप को देखने के लिए देवता तरसते हैं।

कुछ व्याख्याकार इस बात से सहमत नहीं होते। उनका कहना है कि जिस रूप को अर्जुन नहीं देख सका; जिस रूप को संवरण कर लेने का अनुरोध कर अर्जुन भगवान से चतुर्भुजरूप दिखाने की प्रार्थना करता है और जिस चतुर्भुजरूप को देखकर अर्जुन की आँखें जुड़ा जाती हैं,

उसका मन शान्त हो जाता है, उसके हृदय में आनन्द का स्रोत बहने लगता है, भगवान के उसी रूप को देखने के लिए देवता भी तरसते हैं। चतुर्भुजरूप अर्थात् वैकुण्ठवासी नारायण का रूप। भगवान नारायण सहजता से देवताओं के दर्शन में भी नहीं आते।

अनन्य भक्ति द्वारा ही ईश्वर को तत्त्वतः जानना सम्भव

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।५३।।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।।५४।।

यथा माम् दृष्ट्वान् असि (जिस प्रकार तुमने मुझे देखा है) एवंविधः अहम् (इस प्रकार मैं) न वेदैः न तपसा न दानेन च न इज्यया (न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से) द्रष्टुम् शक्यः (देखा जा सकता हूँ) तु परन्तप अर्जुन (परन्तु हे परन्तप अर्जुन !) अनन्या भक्त्या एवंविधः अहम् (केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरे) द्रष्टुम् तत्त्वेन ज्ञातुम् च प्रवेष्टुम् च शक्यः (स्वरूप का ज्ञान, मेरे रूप का दर्शन और मुझमें प्रवेश सम्भव हो सकता है)।

''जिस प्रकार तुमने मुझे देखा है, उस प्रकार मैं न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से देखा जा सकता हूँ।''

''परन्तु हे परन्तप अर्जुन ! केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरे स्वरूप का ज्ञान, मेरे रूप का दर्शन और मुझमें प्रवेश सम्भव हो सकता है।''

भगवान कहते हैं, 'मैंने जो यह कहा कि मेरा यह रूप अत्यन्त कठिनाई से देखा जा सकता है और देवता भी मेरे इस रूप को देखने के लिए तरसते हैं, इसका कारण क्या है, जानते हो, अर्जुन?' भगवान पहले कही हुई अपनी बात को यहाँ दुहराते हैं। कहते हैं – मैं वेदों के द्वारा, तपस्या के द्वारा, दान और याग-यज्ञ के द्वारा भी प्राप्त नहीं होता। अर्जुन तूने जिस रूप में जैसे मुझे देख लिया, उस तरह किसी अन्य के द्वारा मुझे देखा जाना सम्भव ही नहीं है। अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरा यह रूप देखा जाना सम्भव है। मेरा जो रूप तुमने देखा, ऐसा रूप मैं उसी को दिखाता हूँ, जो अनन्य भक्त हो। जो मुझे छोड़कर किसी अन्य को नहीं जानता। ऐसी भक्ति जिसके मन में है, वही मुझे देख सकता है। अर्जुन केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरे स्वरूप का ज्ञान, मेरे रूप का दर्शन और मुझमें प्रवेश सम्भव हो सकता है।

भगवान ने यहाँ एक बहुत अद्‌भुत बात कह दी। उनके अनुसार उनके जानने से अधिक उनका दर्शन पाना बड़ा है और दर्शन से भी बड़ा है उनके अन्दर प्रवेश कर जाना। प्रवेश करने का अर्थ है अपने आपको उनमें तिरोहित कर देना। अपने अहंकार को उनमें विलीन कर देना। यह जो तत्त्वतः उनके भीतर घुस जाना है, ऐसा तो केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही सम्भव होता है। भगवान कहते हैं कि ठीक है कि हमने भगवान की जानकारी ली। वेदों, श्रुतियों ने उनके स्वरूप को बता दिया। साधना भी हम करते हैं। साधना करते हुये शायद भगवान के दर्शन हो भी जाएँ, पर भगवान कहते हैं कि इससे भी उच्चतर अवस्था है मुझे देखना। मुझको देखने की अपेक्षा उच्चतर अवस्था है मेरे भीतर तत्त्वतः प्रविष्ट हो जाना। भगवान से एकाकार हो जाना।

अहंकार नाश का अर्थ

या तो हम उस परम तत्त्व को जानकर तत्त्वस्वरूप हो जाएँ। पहले ही बताया जा चुका है कि दो प्रकार की अवस्थाएँ हैं, या तो हम अपने अहं का इतना विस्तार कर लें कि हम भगवत्स्वरूप हो जाएँ। अपने अहं को इतना बढ़ाएँ कि आब्रह्मस्तम्भपर्यन्त सब कुछ हमारे अहम् में आकर ढक जाए। दूसरा तरीका यह है कि अपने आपको इतना लघु बना लें, इतना अकिंचन बना लें कि हम जाकर भगवान के भीतर ही मानो डूब जाएँ। अनन्य भक्ति के द्वारा ही यह सम्भव है। मान लीजिए एक बुलबुला सागर के वक्ष पर तैर रहा है। उस बुलबुले की दृष्टि दो प्रकार की हो सकती है। फटकर सागर में विलीन होते समय या तो वह सोचे कि वह सागरस्वरूप है। सारा सागर भी वही है। यह एक प्रकार की अनुभूति है। दूसरे प्रकार की अनुभूति यह है कि वह सोचे कि वह तो सागर में विलीन हो गया। उसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है। उसने अपने अस्तित्व को पूरी तरह सागर में डुबो दिया है। उसने अपने अहं को इतना छोटा कर लिया कि उसका अपना कोई अस्तित्व अलग से रहा ही नहीं। **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (५४)

स्वामी धीरेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

शुकदेव के आत्मज्ञान की परीक्षा लेने के लिए राजर्षि जनक ने उन्हें नगर भ्रमण करके आने के लिए कहा। शुकदेव के वापस आने पर जनक ने पूछा, 'क्या देखा?' शुकदेव ने उत्तर दिया, 'देखा, शक्कर का पुतला अन्य सब शक्कर के पुतले के साथ राग-द्वेषात्मक व्यवहार कर रहा है।' जनक ने पुनः पूछा, 'और अभी क्या देख रहे हो?' शुकदेवजी ने कहा, 'एक शक्कर का पुतला (जनक) अन्य शक्कर का पुतला (शुकदेव) से प्रश्न कर रहे हैं और दूसरा उसका उत्तर दे रहा है।' जनक ने कहा, 'जाओ, अभी तुम आत्मज्ञान में सुप्रतिष्ठित हो गये हो।'

''कैसी बात है ! हमलोगों को भी तो वैसा ही होना होगा? क्या कहते हो?''

०४/०२/१९८३, काशी सेवाश्रम

तुमको एक कहानी उपहार के रूप में दे रहा हूँ। एक बड़े राजपण्डित ने अपने छोटे पुत्र को अनेक शास्त्रों की बहुत सारी बातें सिखायी थी। एक दिन उसने राजा से कहकर राजसभा में उस बालक को कथा करने के लिए बैठाया। बालक ने सुन्दर मंगलाचरण करके विभिन्न शास्त्रों का प्रमाण देकर बहुत सुन्दर कथा की। सुनने के बाद सभी ने धन्य-धन्य कहा। उसी समय कहीं से एक छोटा पक्षी उड़कर राजसभा में बालक के सामने आकर बैठ गया। इसके साथ ही वह बालक स्थान-काल को भूलकर अपनी टोपी को खोला तथा उस टोपी से पक्षी को ढक दिया। यह देखकर राजमन्त्री ने हँसकर राजा से कहा, ''महाराज ! यह बालक जो कुछ भी पाण्डित्य दिखा रहा है, वह उसके पिताजी का सिखाया हुआ है, उसका स्वयं का नहीं है। बालक का अपना स्वभाव पक्षी पकड़ने का है। उसका स्वाभाविक बाल-स्वभाव प्रकट हो गया।'

''कोई कितना बड़ा कार्य क्यों न करे या बातें क्यों न करे, उसका स्वयं का स्वभाव कभी-न-कभी प्रकट अवश्य ही होगा। 'स्वभावो दुरतिक्रमणीयः।'

०५/०१/१९८४, काशी सेवाश्रम

''तत्त्वज्ञान की प्राप्ति में करोड़ों विघ्न हैं। केवल मन्दिर-दर्शन के मार्ग में ही ५० लाख हैं। गंगास्नान के मार्ग में २५ लाख तथा दान के मार्ग में १२.५० लाख। यह सब विघ्न अदृश्य होता है, आँखों से नहीं देखा जाता।

यह सुनकर भीमसेन ने श्रीकृष्ण से कहा, ''हे श्रीकृष्ण! कहो, कहाँ पर सब विघ्न हैं। मैं गदा से सभी विघ्नों का नाश करूँगा।''

श्रीकृष्ण ने कहा, ''यह सभी विघ्न अदृश्य हैं। यदि जानना चाहते हो, तो आज विशेष उत्सव का दिन है, गंगास्नान के लिए जाओ। विघ्न को जान जाओगे।''

गदा हाथ में लेकर भीमसेन पूरा दिन गंगातीर पर लोगों के बीच में विघ्न को ढूँढ़ रहे हैं। किन्तु कुछ भी नहीं पाकर वापस आ गये।

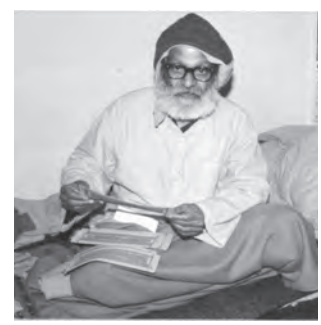
स्वामी धीरेशानन्द

श्रीकृष्ण ने कहा, ''विघ्न को देखा?''

''कहाँ, ढूँढ़ तो नहीं पाया।''

''गंगा-स्नान किये हो?''

''नहीं, उसके लिए समय कहाँ पाया? पूरा दिन तो विघ्न को ढूँढ़ता रहा।''

''देखा? कितने लोग कितनी दूर से आकर गंगा-स्नान कर रहे हैं और तुम पूरा दिन गंगातीर पर घूमकर भी गंगा-स्नान के लिए समय नहीं पाये। अब समझ गया शुभ कर्म में कितना विघ्न है।''

''हाँ समझा।''

'विद्यायां धन्विनां कोटि तदर्धं हरिमन्दिरे।
तदर्धं जाह्नवीतीरे तदर्धं दक्षिणे करे।।'

''धन्विनां कोटि अर्थात् एक करोड़ योद्धा विघ्न करते हैं। दक्षिण करे अर्थात् दक्षिण हाथ से दान करने में १२.५० लाख विघ्न होते हैं। ये सब बातें शुभ कर्म में बहुत विघ्न हैं, यह बताने के लिए रूपक के रूप में वर्णन किया गया है।''

''कितनी अच्छी बातें हैं? अच्छी हैं न?''

१०/१०/१९८४, काशी सेवाश्रम

''बारंबार सर्दी-खाँसी ने शरीर को दुर्बल कर दिया है। ऐसा लग रहा है कि अन्त समय आ गया है। अभी राम-राम कहकर बाकी और कुछ दिन काट देने से ही हुआ। उसके लिए नित्य प्रार्थना करता हूँ –

अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम्।
देहि मे कृपया देव त्वयि भक्तिरचंचला।।

अर्थात् मेरी मृत्यु बिना कष्ट से हो और मैं संसार में बिना किसी कष्ट के जीवित रहूँ। हे ईश्वर, मेरे ऊपर दया करो तथा अपने चरणों में अचल भक्ति दो।

सुना कि सुनील महाराज (स्वामी सर्वानन्द) को कार्य और अच्छा नहीं लग रहा है तथा वह शीघ्र ही वापस आ जायेंगे। वे कैसे हैं बताना।

पूरा जीवन ही एक विराट स्वप्न को छोड़कर और कुछ नहीं है। स्वप्न या निद्रा के भंग हो जाने पर और कुछ नहीं रहता। जो है वही अर्थात सत्य।

अनादि मायया सुप्तो यदा जीवो प्रबुध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा।।

अज्ञान, निद्रा में सोया हुआ जीव न जाने कितना स्वप्न देखता है। किन्तु ज्ञान हो जाने के बाद निद्रा टूट जाती है और जीव स्वयं के स्वरूप में ही लीन हो जाता है। उस समय और स्वप्न नहीं करता। न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। एक सुन्दर श्लोक तुमको उपहार दे रहा हूँ –

'अहंकारो धियं व्रते मा सुप्तोऽयं प्रबोधय।
उत्थिते परमानन्दे नाहं न त्वं नेदं जगत्।।'

परमपति परमानन्द-स्वरूप परमात्मा अज्ञान निद्रा से निद्रित हैं। कुलटा स्त्री जैसी बुद्धि अहंकार उपपति के साथ निमग्न होकर कहती है, ''अहा ! हमलोग इतना आनन्द कर रहे हैं और यह सो रहा है? उसको जगाकर इस आनन्द का सहभागी करेंगे क्या?'' अहंकार ने कहा, ''सावधान, उसको जगाने से तुम, मैं और यह जगत कुछ भी नहीं रहेगा। हमलोग सब हवा में उड़ जायेंगे। जितना समय तक वह निद्रित है, उतना समय तक ही हमारा राज्य है।'' सुप्तोऽयं (यह सो रहा है उसे सोने दो) मा प्रबोधय (उसको मत जगाओ)।

२२/०२/१९८८, कनखल सेवाश्रम

''सत्संग रत्नावली उद्बोधन पत्रिका में प्रकाशित करना चाहते हो। वह सब तुमको दे दिया हूँ। तुमको जो इच्छा हो, वही करो। फिर भी उद्बोधन उसको बहुत अधिक पसन्द करेगा, ऐसा नहीं लगता। मेरा नाम लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

''पूर्णात्मानन्द का कोई पत्र मुझे नहीं मिला है। अभी मुझे वह सब प्रकाशित करना और नाम देना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अभी राम-राम कहते हुए जीवन कट जाये, ऐसा आशीर्वाद करो। यह जगत-स्वप्न और अच्छा नहीं लगता। जितना जल्दी यह स्वप्न टूट जाये, वही चाहता हूँ। स्वामीजी के इस वाक्य की ही मैं कामना कर रहा हूँ – Dream no more. Know the truth. Be one with it. Let visions cease (अर्थात् और अधिक स्वप्न नहीं। सत्य जान जाओ। उसके साथ एक हो जाओ। स्वप्न समाप्त हो जाये)

''मैं यह जानकर बहुत आनन्दित हुआ कि तुमने स्वामीजी के ऊपर एक विडियो बनाया। उसे देखकर कितने लोग आनन्द पायेंगे। तुम धन्य हो ! तुमने कितने लोगों को आनन्द दिया। आशा करता हूँ कि कार्य के साथ-साथ खूब जप-ध्यान भी कर रहे हो। उसको नहीं किया, तो विडियो-मिडियो कुछ भी कार्य नहीं आयेगा। केवल लंगर डालकर पतवार चलाने जैसा हुआ।

''अभी मेरे अन्दर नवीन लेख लिखने की शक्ति और उत्साह नहीं है। दोनों आँखों में कैटरैट ऑपरेशन होने के बाद मैं शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर हो गया हूँ। (मन के) ऊपर लेख लिखना और पुस्तक को लेकर खोजना अब और इस जीवन में नहीं होगा। जो होना था, वह बहुत हो गया। अब तुम लोग लिखो। मेरा भाव अभी है, 'अब शिव पार करो मेरी नैया'। मैं बहुत आनन्द में ही हूँ। ईश्वर जो करते हैं, वह मंगल के लिए ही करते हैं।

२४/११/१९८८, कनखल सेवाश्रम

''एक छोटी-सी पुस्तक लिखने का प्रयास करो। Spiritual realization of Sri Ramakrishna and their philosophical synthesis. ठाकुर के सर्वधर्म समवन्य का आधार क्या है? किस मूल आधार पर उनका सर्वधर्म आधारित है। इस विषय में दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य शास्त्री द्वारा लिखित लेख 'शंकर-रामानुज-माधवाचार्य-श्रीरामकृष्ण' को पढ़ सकते हो। यह लेख 'विश्वचैतन्य श्रीरामकृष्ण' ग्रन्थ में मिल जायेगा। इसके साथ ही साथ तुम उद्बोधन में प्रकाशित दो और लेख 'स्वामी विवेकानन्द ओ अद्वैतवाद' (६५ वर्ष, संख्या २ और ३) तथा 'नानादृष्टिते श्रीरामकृष्ण' (वर्ष ८२, संख्या ५) पढ़ सकते हो।

तुमने कनखल में मेरे लिए एक बहुत अच्छा शीतप्रतिरोधक जैकेट भेज दिया है। वह जैसा सुन्दर है वैसा नयनाभिराम भी है, केकिकण्ठाभनीलम् (नीला रंग का) है, बहुत कोमल है, बहुत अच्छा है। माउंट एवरेस्ट जाते समय लगता है, ऐसा ही जैकेट लेकर जाते हैं। इसके लिए बहुत धन्यवाद। तुम मुझे याद रखे हुए हो, इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। धन्यवाद के प्रत्युत्तर में क्या कहना होता है, जानते हो? लगता है तुम नहीं जानते हो, तो सुनो।

''स्वामीजी के साथ कई मेम भारत आयी थीं। बेलूड़ मठ उसी समय खरीदा गया था। तब भी अतिथियों के निवास हेतु कोई उपयुक्त भवन नहीं बना था। वे मेम मठ-प्रांगण में तम्बू डालकर रह रही थीं। स्वामीजी ने खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द जी) को उनलोगों की देखरेख करने के लिए नियुक्त किया था। खोका महाराज यथासाध्य देखरेख कर रहे थे। यह-वह ले आना, ले जाना इत्यादि। एक दिन स्वामीजी ने खोका महाराज से पूछा, 'ओ खोका, तुम उनलोगों की देखरेख कर रहे हो, तो।'

खोका महाराज ने उत्तर दिया – हाँ, कर रहा हूँ।

तुम जब उनलोंगो के लिए कुछ ला देते हो, तो वे क्या कहती हैं?

खोका महाराज ने उत्तर दिया – वे लोग Thank you कहती हैं।

स्वामाजी ने पूछा – इसके प्रत्युत्तर में तुम क्या कहते हो?

खोका महाराज ने कहा – मैं और क्या उत्तर दूँगा। मैं चुपचाप रहता हूँ।

स्वामीजी ने कहा – तुमलोगों के साथ रहना बहुत कठिन है। तुमलोग थोड़ी-सी भी भद्रता नहीं जानते हो। शील-व्यवहार कुछ भी नहीं सीखा। तुमलोगों का क्या होगा, तुमलोग किसी कार्य के नहीं हो।

खोका महाराज ने कहा – क्या कहना होता है, मैं तो नहीं जानता। तुम मुझे सीखा दो कि मुझे क्या कहना होगा। मैं वही कहूँगा।

स्वामीजी ने कहा – वे लोग जब Thank you कहेंगी, तब कहना don't care.

''खोका महाराज ने वैसा ही कहा। मेम लोग तो पहले बहुत आश्चर्यचकित हो गयीं। तदुपरान्त उनलोंगो के पास स्वामीजी के आने पर मेम लोगों ने उनको वह बात बतायी। तब स्वामीजी बहुत जोर से हँसने लगे। यह देखकर लोगों ने समझ लिया कि यह स्वामीजी का ही कार्य है। तब सभी लोग मिलकर बहुत हँसने लगे। स्वामीजी बहुत रसिक जो थे।

''तुम्हारा वह जैकेट कैसे पहनना होता है, ब्रह्मचारी पराशर ने दिखा दिया। अगले दिन पहनने लगा, तो चैन नहीं लगा पा रहा था। कितना झंझट है, एक चैन को एक छेद में लगाकर दूसरे चैन से खींचना होगा इत्यादि। बहुत खींचा-तानी करके अन्त में हारकर नियती महाराज को देकर उससे जान बचाया। वह उसे उपयोग में लाये। उसे प्राय: ही सुबह के समय ठण्ड में दिल्ली जाना होता है। मैं बच गया। बन्दर के गले में क्या मुक्ताहार शोभा पाता है? मैं पुराने जमाने का एक निर्बोध व्यक्ति हूँ। मैं किसी तरह से upto date नहीं हो पाया। पूरा मूँह दाढ़ी-मूँछ से भरा हुआ है, वह अच्छा सामान इस शरीर पर कैसे शोभा पायेगा?

०५/११/१९९० कनखल सेवाश्रम

''उद्बोधन में प्रकाशित देवी गिरीजी की स्मृतिकथा उसकी प्रतियाँ मैंने नहीं माँगी थी। ऐसा लगता है कि तुम हिन्दी में प्रकाशित एक प्रति दे कर गये हो, उसकी प्रतिलिपि मैं माँग रहा था। यदि हो सके तो वह भेजना।

''बॉब, जार्ज और मेरी तीनों भारत आये थे। कनखल में उनलोगों के साथ मेरी भेंट हुई थी। मेरी अस्वस्थ हो गयी थी, यह सुनकर दुख हुआ। भारत की जलवायु और भोजन उसका कारण हो सकता है। वे लोग कितना भाव और भक्ति लेकर आते हैं, किन्तु हमलोग उनका अच्छी तरह से आतिथ्य करना नहीं जानते और नहीं कर पाते। 'सहनं

सर्वदुखानाम्' हमें सभी दुख और कष्ट को सहन करना ही होगा। कितने लोग सहन कर सकते हैं? वास्तव में कार्यरूप में इसे परिणत करना बहुत कठिन है। बॉब, जार्ज और मेरी को मेरी आन्तरिक शुभेच्छा कहना।

''हमारे प्रभु (श्रीरामकृष्ण) और उनके सभी शिष्य बहुत रसिक थे। वेदान्ती ही सही-सही रसिक हो सकता है, क्योंकि वे लोग जगत को सदा माया के रूप में देखते हैं। सिनेमा या जादू का खेल देखकर किसे आनन्द नहीं होता है? इसीलिए आचार्य ने कहा है – जगच्चित्रं स्वचैतन्ये पचे चित्रमिवार्पितम्। मायया दतुपेक्षेण्ये चैतन्यं परिशेष्यताम्।

''मेरी सफेद दाढ़ी देखकर तुम्हारे अमेरिकी भक्तों ने मुझे एक पहुँचा हुआ वृद्ध साधु मान लिया है। क्या वे लोग नहीं जानते कि सफेद दाढ़ी बहुत कुछ छिपा सकती है? जो भी हो मैं सोचता हूँ कि मैं एक पवित्र संग में हूँ। क्योंकि ईसाइयों का ईश्वर बादल के ऊपर सिंहासन पर बैठा हुआ ईसा मसीह, पोप, बिसप, मोहम्मद, जरथुश्त्र और अनेक हिन्दू देवी-देवता जैसे ब्रह्मा, विश्वकर्मा, अनेक ऋषि, श्रीरामकृष्ण इत्यादि सभी की दाढ़ी थी।

''मैंने उद्बोधन के शारदीय अंक (वर्ष ९२, संख्या ९) में तुम्हारा निबन्ध 'ठाकुर जोदि आज थाकतेन' को दो बार पढ़ा। पुन: पढ़ूँगा। इतना अच्छा लगा है कि मैं क्या कहूँ? उसके कुछ विशेष भाग को पढ़ते-पढ़ते मैं भावविह्वल हो गया। यदि सम्भव हो, तो उसकी एक प्रति मुझे भेजना। तुम एक निपुण संग्रहकर्ता हो। तुम यहाँ और वहाँ के विविध रंगों का पुष्प-संग्रह कर एक अति सुन्दर पुष्प-गुच्छ की रचना कर रहे हो। तुम इस प्रकार और भी संग्रह करके सभी को आनन्द देते रहोगे और उनके जीवन के पथ को चुनने में सहायक होगे। ईश्वर से यही मेरी प्रार्थना है।''

१७/०३/१९९१, कनखल सेवाश्रम

''ठाकुर किससे क्या कार्य करायेंगे वह हमारी बुद्धि से अगम्य है। हमलोग अपनी बुद्धि से ही अच्छा-बुरा का निर्णय करते हैं। हमलोग जिसे खराब कहते हैं, उस व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में ठाकुर ने कहा है – खा लो, पहन लो – लो।' ठाकुर उन सब को अतितुच्छ मानते थे। वे उनके जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक सब देखते हैं। हम लोग केवल एकमात्र अंश देखते हैं और उसको ही लेकर शोरगुल करके पाताल को कँपा देते हैं। प्रत्येक वर्ष हमलोग भक्तों के साथ उनका जन्मोत्सव करते हैं। हमारे दृष्टिकोण में उनके जीवन का कुछ अशोभन या बुरा होने पर भी वह वास्तव में अन्य रूप से हो सकता है।

१५/०६/१९९१, कनखल सेवाश्रम

God lived with them में स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज की जीवनी लिखे हो, देखकर बहुत आनन्द हुआ। सुना हूँ कि वे कनखल में दक्षेश्वर मन्दिर की दक्षिण दिशा में गंगा तट पर एक झोपड़ी में रहते थे। वहीं पर उन्होंने शरीर-त्याग किया था। कल्याणानन्द महाराज सेवा करने के लिए उनको आश्रम में लाने हेतु गये थे। वे नहीं आये और उन्होंने कहा था कि तुमलोग क्या मुझे शान्ति से मरने भी नहीं दोगे। मेरी दैनन्दिनी में से ३० वक्तृता (Dairy of the Monk) मिली यह जानकर बहुत आनन्द हुआ। विद्यावान, बुद्धिमान लोग मधुमक्खी के समान होते हैं। जहाँ से भी हो, वे लोग शिक्षणीय विषय ग्रहण करते है। दृष्टान्त – अवधूत और उनके चौबीस गुरु। इन सब पर शोध करने की शक्ति मेरे शरीर और मन में नहीं है। तुम्हारे कार्य में आया, यह जानकर ही आनन्दित हूँ। तुम जो अच्छा समझो, वह करना। इस वृद्ध शरीर से और कुछ नहीं होगा। मुझे लेकर और अधिक खींचातानी नहीं करो, यही अनुरोध है। मैंने तो सोचा था कि सब दैनन्दिनी फेंक ही दूँगा और बहुत कुछ लेख लिखने के लिए निर्दिष्ट करके रखा था। वह भी रखा हुआ है। मेरे इस शरीर को गंगा में प्रवाहित होने के पश्चात् तुम उसे लेने का प्रयास कर सकते हो। हो सकता है कि तुम्हारे किसी कार्य में आये। तुमलोग अभी मुझे ऐसा आशीर्वाद करो कि जिससे उनका नाम और उनका स्मरण करते हुए जीवन व्यतीत हो जाये। मैं और कुछ नहीं चाहता। अन्तिम समय में रामकृष्ण नाम के बिना कोई गति नहीं है मेरी। रामकृष्ण भजो, रामकृष्ण का चिन्तन करो, रामकृष्ण को सार मान लो। ऐसा दयालु और कोई नहीं है। जीवनी लिखने के सम्बन्ध में गौरदास महाराज (स्वामी अतुलानन्द) के साथ वार्ता हुई थी। उन्होंने जो कहा था, उसको लिखकर भेज दिया हूँ। विषय चिन्तनीय है। एक दिन उन्होंने कहा था – जीवनी २५ प्रतिशत सत्य होती है और बाकी अतिशयोक्ति होती है। पुन: Atma alone avidence के पृष्ठ संख्या १४५ की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। **(क्रमश:)**

रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल में वार्षिकोत्सव आयोजित हुआ

रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल में १४ अप्रैल, २०२३ से १७ अप्रैल, २०२३ तक वार्षिकोत्सव मनाया गया। १४ अप्रैल को आश्रम-प्रांगण में निर्मित पांडाल में स्वामी विवेकानन्द जीवन और संदेश पर, १५ अप्रैल को श्रीमाँ सारदा के जीवन और संदेश पर और १६ अप्रैल को श्रीरामकृष्ण मंदिर में भक्त-सम्मेलन में श्रीरामकृष्ण जीवन और संदेश पर रामकृष्ण आश्रम, उज्जैन के सचिव स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी, रामकृष्ण मिशन, इन्दौर के

सचिव स्वामी निर्विकारानन्द जी, रामकृष्ण मिशन, भोपाल के सचिव स्वामी नित्यज्ञानानन्द जी और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के 'विवेक ज्योति' के सम्पादक स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी के व्याख्यान हुये। १६ अप्रैल को ही शाम ५ बजे से विवेकानन्द विद्यापीठ, भोपाल ने अपने विद्यालय के आडिटोरियम में वार्षिकोत्सव मनाया, जिसमें बच्चों ने विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति दी। इसमें उपरोक्त महात्माओं के द्वारा बच्चों को पुरस्कार प्रदान किया गया। १७ अप्रैल, २०२३ को विवेकानन्द विद्यापीठ, भोपाल के आडिटोरियम में प्रात: ९ बजे से रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में सभा का आयोजन हुआ, जिसमें उपरोक्त सभी संन्यासियों ने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना, उसके आदर्शों और क्रियान्वयन पर व्याख्यान दिया। श्री लक्ष्मीनारायण इन्दूरिया जी ने भी बच्चों को सम्बोधित किया। बच्चों ने मनमोहक और प्रेरक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। समस्त कार्यक्रमों का संचालन विवेकानन्द विद्यापीठ, भोपाल के प्राचार्य स्वामी कृष्णध्यानानन्द ने किया। कार्यक्रम में छात्र-छात्राएँ, अध्यापक और अभिभावकों ने अत्यधिक संख्या में भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, मुम्बई में शताब्दी महोत्सव

रामकृष्ण मठ, मुम्बई ने २० अप्रैल, २०२३ से २३ अप्रैल, २०२३ तक अपने आश्रम का शताब्दी स्थापना समारोह का प्रथम चरण बड़े व्यापक रूप से आयोजित किया, जिसमें लगभग १८४ संन्यासियों और हजारों भक्तों ने भाग लेकर उस दिव्य वातावरण का आनन्द लिया। कार्यक्रम कई चरणों में विभिन्न स्थानों पर आयोजित हुआ, जिसमें रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ

उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ, चैन्नई के अध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज, महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री रमेश बैस और अन्यान्य सन्तों ने व्याख्यान दिया।